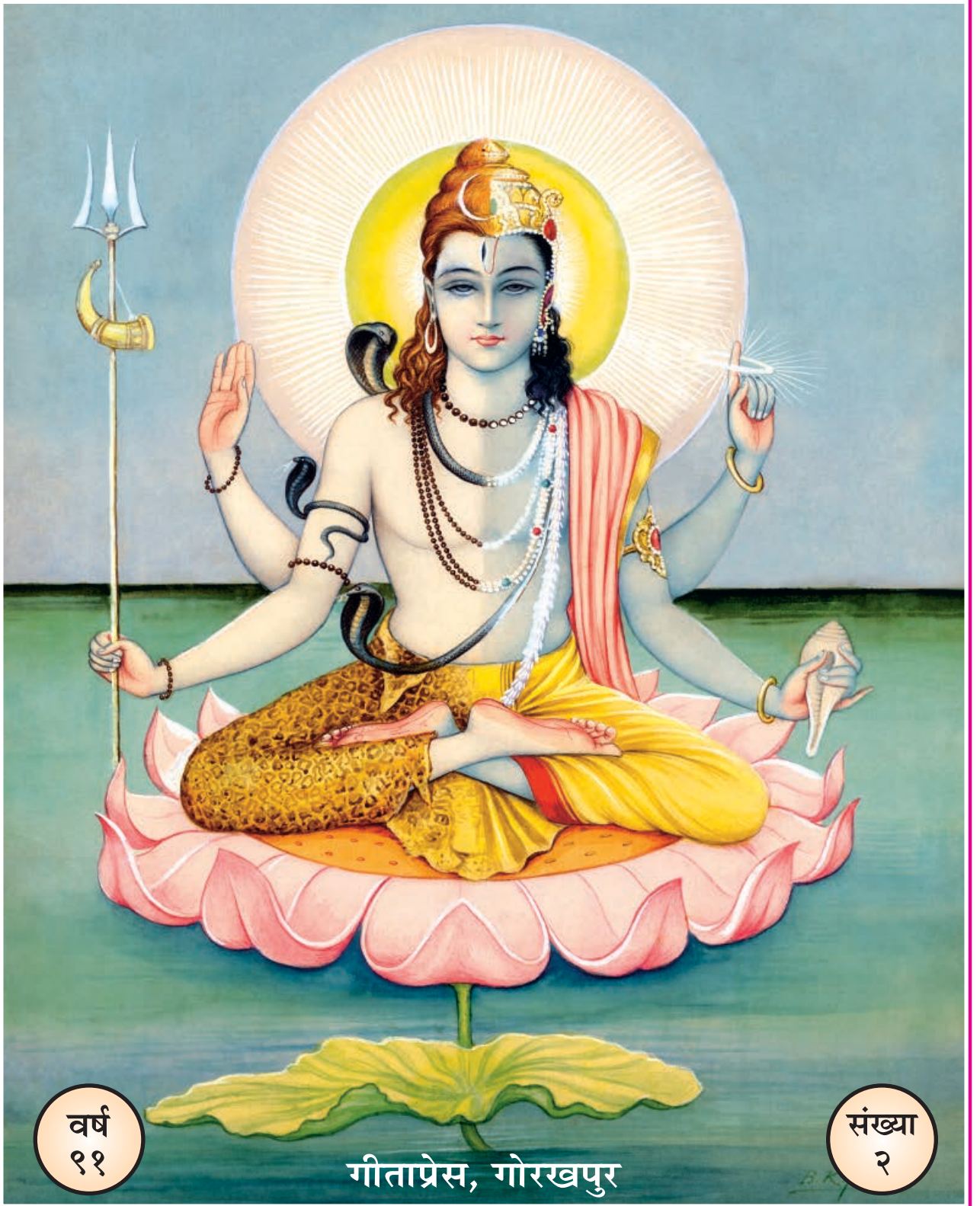


* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये



वर्ष
९९

गीताप्रेस, गोरखपुर

संख्या
२

भगवान् श्रीहरिहर



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with

By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!



उमासहित भगवान् मृत्युंजय

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



कल्याण

वन्दे वन्दनतुष्टमानसमतिप्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम् ।
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम् ॥

वर्ष

११

गोरखपुर, सौर फाल्गुन, वि० सं० २०७३, श्रीकृष्ण-सं० ५२४२, फरवरी २०१७ ई०

संख्या

२

पूर्ण संख्या १०८३

श्रीमृत्युञ्जयशिव-ध्यान

हस्ताम्भोजयुगस्थकुम्भयुगलादुद्धृत्य तोयं शिरः

सिञ्चन्तं करयोर्युगेन दधतं स्वाङ्गे सकुम्भौ करौ ।

अक्षस्रङ्मृगहस्तमम्बुजगतं मूर्धस्थचन्द्रस्रव-

त्पीयूषार्द्रतनुं भजे सगिरिजं त्र्यक्षं च मृत्युञ्जयम् ॥

जो अपने दो करकमलोंमें रखे हुए दो कलशोंसे जल निकालकर उनसे ऊपरवाले दो हाथोंद्वारा अपने मस्तकको सींचते हैं। अन्य दो हाथोंमें दो घड़े लिये उन्हें अपनी गोदमें रखे हुए हैं तथा शेष दो हाथोंमें रुद्राक्ष एवं मृगमुद्रा धारण करते हैं, कमलके आसनपर बैठे हैं, सिरपर स्थित चन्द्रमासे निरन्तर झरते हुए अमृतसे जिनका सारा शरीर भीगा हुआ है तथा जो तीन नेत्र धारण करनेवाले हैं, उन भगवान् मृत्युञ्जयका, जिनके साथ गिरिराजनन्दिनी उमा भी विराजमान हैं, मैं भजन (चिन्तन) करता हूँ। [शिवपुराण-सतीखण्ड]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर फाल्गुन, वि० सं० २०७३, श्रीकृष्ण-सं० ५२४२, फरवरी २०१७ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१- श्रीमृत्युञ्जयशिव-ध्यान	३	१५- भक्त रामनारायण [भक्तगाथा]	२७
२- कल्याण	५	१६- श्रीशिवसूक्ति: [श्रीपूर्णचन्द्रकृत उद्भटसागर]	२९
३- भगवान् श्रीहरिहर [आवरणचित्र-परिचय]	६	१७- द्वादश ज्योतिर्लिंगोंके अर्चा-विग्रह [ज्योतिर्लिंग-परिचय]	३०
४- शिव-तत्त्व (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	७	१८- तीर्थयात्रा [कहानी] (श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')	३२
५- शिवसे शिक्षा (ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)	९	१९- चार पुरुषार्थ (डॉ० श्रीकृष्णजी द० देशमुख) [अनुवाद—श्रीमिलिन्दजी काले] [प्रेषिका—श्रीमती मुक्ता वाल्वेकर]	३४
६- शरीरका रक्षातन्त्र (श्रीगणेशदत्तजी दूबे) [प्रेषक—डॉ० श्रीकेशरीनारायणजी त्रिपाठी]	१०	२०- मनुष्य जन्मकी सार्थकता (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) [प्रस्तुति—साधन-सूत्र: श्रीहरिमोहनजी]	३८
७- परमार्थ-साधनके आठ विघ्न (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ...	११	२१- चेतावनी (पूज्य स्वामी श्रीपथिकजी महाराज) [प्रेषक—श्रीकुँवरसिंहजी]	३९
८- गजानन-स्तुति [कविता] (डॉ० श्रीसत्यप्रकाशजी 'बृजेश किंकर')	१४	२२- भगवान् शंकरकी गोभक्ति	४०
९- शिव और सती (श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायणी)	१५	२३- जीवनोपयोगी बातें [संतवाणी] [प्रस्तुति—डॉ० श्रीओमप्रकाशजी वर्मा]	४२
१०- शिवरूप-माधुरी—(श्रीशरदजी अग्रवाल, एम०ए०)	१८	२४- साधनोपयोगी पत्र	४३
११- साधकोंके प्रति— (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१९	२५- व्रतोत्सव-पर्व [चैत्रमासके व्रतपर्व]	४५
१२- नटराज शंकर [कविता] (श्रीपृथ्वीसिंहजी चौहान 'प्रेमी') ...	२१	२६- कृपानुभूति	४६
१३- काशीके कुछ शिवलिंग (श्रद्धेय पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)	२२	२७- पढ़ो, समझो और करो	४७
१४- काशीमें गंगालाभसे मुक्ति (श्रीसत्यजी ठाकुर)	२६	२८- मनन करने योग्य	५०

चित्र-सूची

१- भगवान् श्रीहरिहर	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- उमासहित भगवान् मृत्युंजय	(")	मुख-पृष्ठ
३- भगवान् श्रीहरिहर	(इकरंगा)	६
४- भगवान् शिव	(")	७
५- भक्त रामनारायणको भगवान् सदाशिवके दर्शन	(")	२८
६- श्रीसोमनाथ ज्योतिर्लिंग	(")	३०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनंद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क
सजिल्द ₹२२०

विदेशमें Air Mail }
सजिल्द शुल्क }

वार्षिक US\$ 50 (₹3000)
पंचवर्षीय US\$ 250 (₹15,000)

{ Us Cheque Collection
{ Charges 6\$ Extra

पंचवर्षीय शुल्क
सजिल्द ₹११००

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : gitapress.org

e-mail : kalyan@gitapress.org

09235400242/244

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

Online सदस्यता-शुल्क—भुगतानहेतु- gitapress.org पर Online Magazine Subscription option को click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—प्रतिध्वनि ध्वनिका ही अनुसरण करती है और ठीक उसीके अनुरूप होती है, इसी प्रकार दूसरोंसे हमें वही मिलता है और वैसा ही मिलता है, जैसा हम उनको देते हैं। अवश्य ही, वह मिलता है बीज-फल-न्यायके अनुसार कई गुना बढ़कर!

याद रखो—सुख चाहते हो, दूसरोंको सुख दो; मान चाहते हो, मान प्रदान करो; हित चाहते हो, हित करो; और बुराई चाहते हो तो बुराई करो। याद रखो जैसा बीज बोओगे वैसा ही फल मिलेगा। फलकी न्यूनाधिकता जमीनके अनुसार होगी।

याद रखो—हिंसापरायण लोग अपनी हिंसाके फलसे स्वयं नष्ट हो जाते हैं और जो साधु-स्वभावके लोग हैं, वे अपनी साधुताके परिणामस्वरूप समस्त पापोंसे छूट जाते हैं। हिंसा हिंसकको खा जाती है और साधुता पापकी प्रचण्ड अग्निसे साधुको बचा लेती है।

याद रखो—हिंसासे साधुताकी तुलना वैसे ही नहीं हो सकती, जैसे जहरसे अमृतकी। साधु पुरुष जैसे अपने स्वाभाविक आचरणोंसे जगत्में प्रेम, करुणा, क्षमा और एकात्मताका विस्तार किया करते हैं, वैसे ही हिंसक मनुष्य वैर, निर्दयता, क्रोध और अनात्मीयताका प्रसार करते हैं।

हिंसकोंसे इस जगत्में दुःख बढ़ता है और परलोक बिगड़ता है; दूसरी ओर साधुओंसे जगत्में सुख-शान्ति फैलती है और परलोक तो बनता ही है। साधुताका फल देरसे भले ही हो, पर होता है अमृतमय।

याद रखो—मनुष्यको पापसे सदा सावधान रहना चाहिये। जरासे पापको भी सहन करना पापके विशाल वृक्षकी जड़ जमाना है। मनुष्य जब एक बार पापको स्वीकार करके उसमें फँस जाता है तो फिर वह दिनोंदिन उसीमें लिपटता ही चला जाता है और आगे चलकर उसीके संगमें सुखका—यहाँतक कि कर्तव्यका अनुभव करने लगता है। उसके पापोंकी एक ऐसी दृढ़ और मोहक शृंखला बन जाती है, जिसके बन्धनसे वह सहज ही कभी छूट नहीं सकता और उसके नये-नये रूपोंपर मोहित होता रहता है।

याद रखो—पाप करते समय अज्ञानवश सुखका बोध होता है। उस समय परिणाम सामने नहीं होता, परंतु परम्परासे चली आयी हुई परिणामकी एक कल्पना मनमें होती है, जो पापकर्मका सम्पादन करनेके बाद उसे धिक्कारती और डराती है, परंतु पाप करते-करते वह कल्पना भी मिट जाती है और पापमें ही गौरव-बुद्धि हो जाती है। फिर उसकी बुद्धि सहज ही पुण्यको पाप और पापको पुण्य देखती है। मनुष्यकी यह स्थिति बहुत ही निराशाजनक होती है।

इसलिये निरन्तर पापियोंके संगसे बचना और साधुओंके संगमें रचना-पचना चाहिये। बुद्धिके विपरीत निर्णयसे, सम्भव है एक बार इसमें प्रत्यक्ष हानि दिखलायी दे; परंतु यह निश्चय है कि पापात्माओंके संगका परिणाम दुःख और साधुओंके संगका परिणाम सुख अनिवार्य है। साधु-संगका महत्त्व समझनेके बाद बननेवाला साधु-संग तो इतना विलक्षण होता है कि उससे दुःख-बीजका सर्वथा नाश और सात्वत-आत्यन्तिक सुखकी सहज प्राप्ति हो सकती है।

‘शिव’

इसलिये निरन्तर पापियोंके संगसे बचना और साधुओंके संगमें रचना-पचना चाहिये। बुद्धिके विपरीत निर्णयसे, सम्भव है एक बार इसमें प्रत्यक्ष हानि दिखलायी दे; परंतु यह निश्चय है कि पापात्माओंके संगका परिणाम दुःख और साधुओंके संगका परिणाम सुख अनिवार्य है। साधु-संगका महत्त्व समझनेके बाद बननेवाला साधु-संग तो इतना विलक्षण होता है कि उससे दुःख-बीजका सर्वथा नाश और सात्वत—आत्यन्तिक सुखकी सहज प्राप्ति हो सकती है।

याद रखो—मनुष्यको पापसे सदा सावधान चाहिये। जरासे पापको भी सहन करना पापके

‘शिव’

भगवान् श्रीहरिहर



एक बार देवोंने विष्णुभवनमें पहुँचकर उन्हें नमस्कार करनेके बाद जगत्के अशान्त होनेका कारण पूछा । भगवान् विष्णुने उनके प्रश्नको सुनकर कहा—हम सभी लोग शिवजीके पास चलें। वे महान् ज्ञानी हैं। इस चराचर जगत्के व्याकुल होनेका कारण वे जानते होंगे। वासुदेवके ऐसा कहनेपर इन्द्र आदि देवगण जनार्दन भगवान्को आगे करके मन्दरपर्वतपर गये। किंतु वहाँ उन्होंने न तो महादेवको देखा, न देवी पार्वती और न नन्दीको ही। अज्ञानके अन्धकारमें पड़े हुए उन लोगोंने पर्वतको देवशून्य देखा। तब विष्णुने दर्शन प्राप्त न होनेके कारण सकपकाये हुए देवोंको देखकर कहा—क्या आपलोग सामने स्थित महादेवको नहीं देख रहे हैं ? उन्होंने उत्तर दिया—हाँ, हमलोग गिरिजापति देवेशको नहीं देख रहे हैं। हमलोग उस कारणको नहीं जानते, जिससे हमारी देखनेकी शक्ति नष्ट हो गयी।

जगन्मूर्ति विष्णुने उनसे कहा—आपलोग मृडानीका गर्भ नष्ट करनेके कारण महापापसे ग्रस्त हो गये हैं, इसलिये शूलपाणि महादेवने आपलोगोंके सम्यक् अवबोधको और विचारशक्तिको अपहृत कर लिया है। इस कारण आप सब सामने स्थित शंकरको देखकर भी नहीं देख रहे हैं। अतः सब लोग विश्वासके साथ शरीरकी पुवित्रता और देवका दर्शन प्राप्त करनेके लिये

तप्तकृच्छ्र-व्रतद्वारा पावन होकर स्नान करें और महादेवको दूधसे स्नान करानेके लिये डेढ़ सौ घड़ोंका प्रयोग करें।

इस प्रकार कहनेपर इन्द्र आदि देवताओंने शरीरकी शुद्धिके लिये तप्तकृच्छ्रव्रतका एकान्त अनुष्ठान किया। उसके बाद पापसे छूटकर देवताओंने कहा—जगन्नाथ! केशव! आप कृपया यह बतलाइये कि शम्भु किस स्थानपर अवस्थित हैं? जिन्हें हमलोग दूध आदिके अभिषेकसे विधिपूर्वक स्नान करायें। उसके बाद विष्णुने देवताओंसे कहा—देवताओ! मेरे शरीरमें ये शंकर संयुक्त होकर स्थित हैं। क्या आपलोग नहीं देख रहे हैं?

उन लोगोंने विष्णुसे कहा कि हमलोग तो आपमें त्रिपुरनाशक शंकरको नहीं देख रहे हैं। सुरेशान! आप सच बतलाइये कि महेश किस स्थानपर स्थित हैं? तब विष्णुने देवताओंको अपने हृदयकमलमें विश्राम करनेवाले शंकरके लिंगका दर्शन करा दिया। उसके बाद देवताओंने क्रमशः दूध आदिसे उस नित्य, स्थिर एवं अक्षय लिंगको स्नान कराया। फिर उन लोगोंने गोरोचन और सुगन्धित चन्दनका लेपनकर बिल्वपत्रों और कमलोंसे भक्तिपूर्वक उन देवकी पूजा की। फिर शंकरके एक सौ आठ नामोंका जप करनेके बाद उन्हें प्रणाम किया। सभी देवता यह विचारने लगे कि सत्त्वगुणकी प्रधानतासे विष्णु एवं तमोगुणकी अधिकतासे आविर्भूत शिवमें एकता किस प्रकार हुई? देवताओंके विचारको जानकर अविनाशी व्यापक भगवान् विश्वमूर्ति हो गये। फिर तो देवताओंने एक ही शरीरमें कानमें सर्पके कुण्डल पहने; सिरपर आपसमें चिपके लम्बे बालके जटाजूट बाँधे; गलेमें सर्पके हार लटकाये; हाथमें पिनाक, शूल, आजगव धनुष, खट्वांग धारण किये तथा घण्टासे युक्त बाघाम्बर धारण करनेवाले त्रिनेत्रधारी वृषध्वज महादेव और साथ ही कमलके कुण्डलधारी; गरुडध्वज; हार और पीताम्बर पहने; हाथोंमें चक्र, असि, हल, शार्ङ्गधनुष, टंकार—सी ध्वनि करनेवाले शंखको लिये गुडाकेश विष्णुको देखा। उसके बाद ‘सर्वव्यापी अविनाशी प्रभुको नमस्कार है’—इस प्रकार कहकर ब्रह्मा आदि देवताओंने उन हरि

* जो शान्तस्वरूप हैं, कमलके आसनपर विराजमान हैं, मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट धारण करनेवाले हैं, जिनके पाँच मुख हैं, तीन नेत्र हैं, जो अपने दाहिने भागकी भुजाओंमें शूल, वज्र, खड्ग, परशु और अभयमुद्रा धारण करते हैं तथा वामभागकी भुजाओंमें सर्प, पाश, घण्टा, प्रलयाग्नि और अंकुश धारण किये रहते हैं, उन नाना अलंकारोंसे विभूषित एवं स्फटिकमणिके समान श्वेतवर्ण भगवान् पार्वतीपतिको मैं नमस्कार करता हूँ।

वास्तवमें बात भी यही है। एक निर्विकार, नित्य, विज्ञानानन्दधन परब्रह्म परमात्मा ही हैं। उन्हींके किसी अंशमें प्रकृति है। उस प्रकृतिको ही लोग माया, शक्ति आदि नामोंसे पुकारते हैं। वह माया बड़ी विचित्र है। उस कोई अनादि, अनन्त कहते हैं तो कोई अनादि, सान्त मानते हैं; कोई उस ब्रह्मकी शक्तिको ब्रह्मसे अभिन्न मानते हैं तो कोई भिन्न बतलाते हैं; कोई सत् कहते हैं तो कोई असत् प्रतिपादन करते हैं। वस्तुतः मायाके सम्बन्धमें जो कुछ भी कहा जाता है, माया उससे विलक्षण है; क्योंकि उसे न असत् ही कहा जा सकता है, न सत् ही। असत् तो इसलिये नहीं कह सकते कि उसीका विकृत रूप यह संसार (चाहे वह किसी भी रूपमें क्यों न हो) प्रत्यक्ष प्रतीत होता है और सत् इसलिये नहीं कह सकते कि जड दृश्य सर्वथा परिवर्तनशील होनेसे उसकी नित्य सम स्थिति नहीं देखी जाती एवं ज्ञान होनेके उत्तरकालमें उसका या उसके सम्बन्धका अत्यन्त अभाव भी बतलाया गया है और ज्ञानीका भाव ही असली भाव है। इसीलिये उसको अनिर्वचनीय समझना चाहिये। [क्रमशः]

(रा०च०मा० ४।१ सो०)

बीतता है। शौकीन मनुष्यको धनका अभाव तो प्रायः बना ही रहता है; क्योंकि वह आवश्यक-अनावश्यकका ध्यान छोड़कर जहाँ कहीं भी कोई शौककी बढ़िया चीज देखता है, उसीको खरीद लेता है या खरीदना चाहता है। न रुपयोंकी परवा करता है और न अन्य किसी प्रकारका परिणाम सोचता है। सुन्दर मकान, बढ़िया-बढ़िया बहुमूल्य महीन वस्त्र, सुन्दर भोजन, इत्र-फुलेल, कंधे, दर्पण, जूते, घड़ी, छड़ी, पाउडर आदिकी तो बात ही क्या है, खाने-पहनने, बिछाने, बैठने, चलने-फिरने, सूँघने-देखने और सुनने-सुनाने आदि सभी प्रकारके सामान उसे बढ़िया-से-बढ़िया और सुन्दर-से-सुन्दर चाहिये। वह रात-दिन इन्हींकी चिन्तामें लगा रहता है। वैराग्य तो उसके पास भी नहीं फटकने पाता। वह कभी-कभी भगवान्से प्रार्थना करता है कि 'हे भगवन्! मेरे मनमें आपको प्राप्त करनेकी इच्छा है, परंतु मेरे शौकके सामान सदा बने रहें, मुझे नये-नये विलास-द्रव्योंकी प्राप्ति होती रहे और मैं इसी प्रकार विलासितामें डूबा हुआ ही आपको भी पा लूँ।' कहना नहीं होगा कि यह प्रार्थना भी उसकी क्षणभरके लिये ही होती है। ऐसे लोगोंको करोड़पतिसे कंगाल होते देखा जाता है और अर्थ-कष्टके साथ ही आदतसे प्रतिकूल स्थितिमें रहनेको बाध्य होनेका एक महान् कष्ट उन्हें विशेषरूपसे भोगना पड़ता है। जो मनुष्य भगवत्प्राप्ति तो चाहता है परंतु वैराग्य नहीं चाहता और सादा जीवन बितानेमें संकोचका अनुभव करता है, वह भगवत्प्राप्तिके मार्गपर अग्रसर नहीं हो सकता। अतः विलासिताके भावको मनमें आते ही उसे तुरंत निकाल देना चाहिये। यह भाव तरह-तरहकी युक्तियाँ पेश करके पहले-पहल 'कर्तव्य' समझाकर आश्रय प्राप्त कर लेता है, फिर बढ़कर मनुष्यको तबाह कर डालता है, अतएव इससे विशेष सावधान रहना चाहिये। विलासी पुरुषोंका संग करना या

पर-दोष-चिन्तन—यह भी साधन-मार्गका एक भारी विघ्न है। जो मनुष्य दूसरेके दोषोंका चिन्तन करता है; वह भगवान्का चिन्तन नहीं कर सकता। उसके चित्तमें सदा द्वेषाग्नि जला करती है। उसकी जहाँ नजर जाती है, वहीं उसे दोष दिखायी देते हैं। दोषदर्शी सर्वत्र

भगवान्‌को कैसे देखे ? इसी कारण वह जहाँ-तहाँ हर किसीकी निन्दा कर बैठता है। परदोष-दर्शन और परनिन्दा साधन-पथके बहुत गहरे गड्ढे हैं। जो इनमें गिर पड़ता है, वह सहज ही नहीं उठ सकता। उसका सारा भजन-साधन छूट जाता है; अतएव साधकको अपने दोष देखने तथा अपनी सच्ची निन्दा करनी चाहिये। जगत्‌की ओरसे उदासीन रहना ही उसके लिये श्रेयस्कर है।

सांसारिक कार्योंकी अधिकता—मनुष्यको घरके, संसारके, आजीविकाके, यहाँतक कि परोपकारतकके कार्य उसी हदतक करने चाहिये, जिसमें विश्राम करने तथा दूसरी आवश्यक बातें सोचनेके लिये पर्याप्त समय मिल जाय। जो मनुष्य सुबहसे लेकर रातको सोनेतक काममें ही लगे रहते हैं, उनको जब विश्राम करनेकी ही फुरसत नहीं मिलती, तब घण्टे-दो घण्टे स्वाध्याय करने अथवा मन लगाकर भगवच्चिन्तन करनेको तो अवकाश मिलना सम्भव ही कैसे हो सकता है? उनका सारा दिन हाय-हाय करते बीतता है, मुश्किलसे नहाने-खानेको समय मिलता है। वे उन्हीं कामोंकी चिन्ता करते-करते सो जाते हैं, जिससे स्वप्नमें भी उन्हें वैसी ही सृष्टिमें विचरण करना पड़ता है। असलमें तो सांसारिक पदार्थोंके अधिक संग्रह करनेकी इच्छा ही दूषित है। दानके तथा परोपकारके लिये भी धन-संग्रह करनेवालोंकी मानसिक दयनीय दुर्दशाके दृश्य प्रत्यक्ष देखे जाते हैं, फिर भोगके लिये अर्थ-संचय करनेवालोंके दुःख भोगनेमें तो आश्चर्य ही क्या है, परंतु धन संचय किया भी जाय तो इतना काम तो कभी नहीं बढ़ाना चाहिये, जिसकी सँभाल और

देखभाल करनेमें ही जीवनका अमूल्य समय रोज दो घड़ी स्वस्थचित्तसे भगवद्भजन किये बिना ही बीत जाय। जिन बेचारोंके पेट पूरे नहीं भरते, उनके लिये तो कदाचित् दिन-रात मजदूरीमें लगे रहना और अधिक-से-अधिक कार्यका विस्तार करना क्षम्य भी हो सकता है, परंतु जो सीधे या प्रकारान्तरसे धनकी प्राप्तिके लिये ही कार्योंको बढ़ाते हैं, वे तो मेरी तुच्छ बुद्धिमें भूल ही करते हैं। निष्कामभावसे करनेकी इच्छा रखनेवाले पुरुष भी जब अधिक कार्योंमें व्यस्त हो जाते हैं, तब प्रायः निष्कामभाव चला जाता है और कहीं-कहीं तो ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है, जिसमें बाध्य होकर सकामभावका आश्रय लेना पड़ता है; अतएव जहाँतक बने साधक पुरुषोंको सांसारिक कार्य उतने ही करने चाहिये, जितनेमें गृहस्थीका खर्च सादगीसे चल जाय, प्रतिदिन नियमित रूपसे भजन-साधनको समय मिल सके, चित्त न अशान्त हो और न निकम्मेपनके कारण प्रमाद या आलस्यको ही अवसर मिले। कर्तव्य-पालनकी तत्परता बनी रहे और मनुष्य-जीवनके मुख्य ध्येय 'भगवत्प्राप्ति' का कभी भूलकर भी विस्मरण न हो।

विघ्न और भी बहुतसे हैं, पर प्रधान-प्रधान विघ्नोंमें आठ बड़े प्रबल हैं। साधकको चाहिये कि वह दयामय सच्चिदानन्द भगवान् की कृपापर विश्वास करके और उसीका आश्रय ग्रहण करके इन विघ्नोंका नाश कर दे। प्रभु-कृपाके बलसे असम्भव भी सम्भव हो जाता है। मनुष्य प्रभु-कृपापर जितना ही विश्वास करता है, उतना ही वह प्रभुकी सुखमय गोदकी ओर आगे बढ़ता है।

गजानन-स्तुति

(डॉ० श्रीसत्यप्रकाशजी 'बजेश किंकर')

जय भक्त शिरोमणि गण नायक श्रीराम नाम हियधारे हो ।
करें रोम-रोम में रमण राम तुम उमा महेश दुलारे हो ॥
प्रभु रिद्धि-सिद्धि दाता भक्ती, सब विघ्न विनाशन वारे हो ।
मधु-मोदक प्रिय मंगल दाक, तुम जानु विवेक प्रदारे हो ॥

हे विद्यावारिधि सिद्धि सदन, सुख सम्पत्ति देने वारे हो ।
 हो अन्ध बधिर के दुःख टारक, संतति सौभाग्य सम्भारे हो ॥
 प्रभु दीन हीन अविवेकी के, तुम भाग्य कुभाग्य विदारे हो ।
 मुनि विरद आश्रित्य धारि गद्दी प्रभु सत्य दीन रखवारे हो ॥

शिव और सती

(श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायणी)

सिव सम को रघुपति ब्रत धारी । बिनु अघ तजी सती असि नारी ॥

श्रीरामचरितमानसकी इस चौपाईमें ग्रन्थकार श्रीगोस्वामीजीने महर्षि याज्ञवल्क्यके प्रवचनके द्वारा भगवान् शिव और माता सतीदेवीकी असीम महिमा बड़े ही सुन्दर ढंगसे प्रतिपादित की है। प्रथम चरणमें 'सिव सम को' और द्वितीय चरणमें 'सती असि नारी' पदके द्वारा दम्पतीकी महिमाकी गम्भीरता पराकाष्ठाको पहुँचा दी गयी है। भगवान् शिवके लिये 'रघुपति ब्रतधारी' विशेषण ही उनके व्रतकी महत्ताको प्रकट कर रहा है; क्योंकि संसारमें सब धर्मोंका सार, सब तत्त्वोंका निचोड़ भगवत्प्रेम ही निश्चय किया गया है। भगवान् परब्रह्ममें दृढ़ निष्ठाका हो जाना ही परम विशिष्ट धर्म है और भगवान् शिवने तो अपने अनुभवसे इसीको सार समझकर जगत्को निःसार निश्चित कर लिया था। जैसे—

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना । सत हरि भजनु जगत सब सपना ॥

इसी प्रेम-प्रभावकी महिमासे सती-ऐसी नारीमें भी उनकी आसक्ति न थी। जिस समय त्रेतायुगमें कुम्भज ऋषिके आश्रमसे वह सतीके साथ कैलासको लौट रहे थे, उसी समय दण्डकारण्यमें सीताहरणके कारण पत्नीवियोगमें दुःखित मानव-लीला करते हुए श्रीरघुनाथजीका उन्हें दर्शन हुआ और उन्होंने 'जय सच्चिदानंद जग पावन' और 'सच्चिदानंद परधामा' कहकर उनको प्रणाम किया। इसपर सतीको यह सन्देह उत्पन्न हुआ कि नृपसुतको 'सच्चिदानंद परधामा' कहकर सर्वज्ञ शिवने क्यों प्रणाम किया? भगवान् शिवने सतीको भगवत्-अवतारकी बात अनेक प्रकारसे समझायी, परंतु उन्हें बोध न हुआ—

लाग न उर उपदेसु जदपि कहेउ सिवैं बार बहु ।

बोले बिहसि महेसु हरिमाया बलु जानि जियँ ॥

शिवजीने अपने हृदयमें ध्यान धरकर देखा कि 'इसमें हरिमायाकी प्रेरणा हो रही है; क्योंकि जब 'मोरेहु

कहें न संसय जाहीं' तब प्रभुकी जो इच्छा है, उसीमें सतीको प्रेरित कर देना हमारा भी धर्म है।' इसलिये उन्होंने कहा—

जौं तुम्हें मन अति संदेहू । तौ किन जाइ परीछा लेहू ॥
तब लगि बैठ अहउँ बटछाहीं । जब लगि तुम्ह ऐहहु मोहि पाहीं ॥

यद्यपि भगवान् शिवके विषयमें यह प्रमाण है कि 'भावित मेदि सकहिं त्रिपुरारी' तथापि जिस भावीमें हरिकी इच्छा शामिल है, उसे हृदयमें विचारकर भगवान् शिव कदापि उसके मेदनेकी इच्छा नहीं करते, बल्कि वैसा ही होनेमें आप भी सहायक हो जाते हैं—

हरि इच्छा भावी बलवाना । हृदयँ बिचारत संभु सुजाना ॥

—सच है, सुजान भक्तोंकी भक्तिका इसीसे परिचय मिलता है।

यही मर्म श्रीगुरु वसिष्ठजीके इस वाक्यमें भरा हुआ है—

सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ ।

क्योंकि जब अगाध-हृदय श्रीभरतजीने कहा कि—
सो गोसाइँ बिधि गति जेहिं छँकी । सकइ को टारि टेक जो टेकी ॥

बूझिअ मोहि उपाउ अब सो सब मोर अभागु ॥

तब वसिष्ठजीने स्पष्ट कह दिया—

तात बात फुरि राम कृपाहीं । राम बिमुख सिधि सपनेहुँ नाहीं ॥
वस्तुतः बात भी यही है, भगवान् शिव तथा श्रीवसिष्ठजीको भावीके मेदनेकी सामर्थ्य भी तो रामभक्तिके प्रतापसे ही मिली थी। नहीं तो—

कह मुनीस हिमवंत सुनु जो बिधि लिखा लिलार ।

देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेदनिहार ॥

श्रीमहादेव अथवा मुनि वसिष्ठजी अपने देवपन या मुनिपनके बलसे विधि-अंकके मिटानेकी सामर्थ्य तो रखते नहीं थे। यह अघटित सामर्थ्य भगवान्की दयासे और भगवत्-भक्तिके प्रतापसे भक्तोंको ही हो सकती है। अतः उन भक्तोंका यह सिद्धान्त रहता है कि 'हम तो

‘बिनु अघ तजी सती असि नारी’ इस पदमें ‘अघ’ शब्द आया है। अघ और अपराधमें महान् अन्तर है। अघ उस दुष्कर्मको कहते हैं, जो वेदादिद्वारा निषिद्ध होनेपर भी जान-बूझकर अपनी वासनानुसार किये जाते हैं। अतः वह क्षम्य कभी नहीं हो सकते, उनका फल अवश्यमेव भोगना पड़ता है, परंतु ‘अपराध’ चूकको कहते हैं, जो सदा क्षम्य होती है; क्योंकि वह किसी पापबद्धि या क्वासनाके कारण न होकर भूलसे की

साधकोंके प्रति—

[किस ओर ?]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

बार-बार अपनेसे पूछना चाहिये—मेरा चित्त किस ओर जा रहा है? वृत्तियाँ दो प्रकारकी हैं—गौण और मुख्य। हमलोगोंकी मुख्य वृत्ति निरन्तर संसारके विषयों और भोगोंकी ओर प्रवाहित हो रही है। सारी इन्द्रियाँ और सारी वृत्तियाँ स्वाभाविक ही पतनकी ओर भागी जा रही हैं। गौण वृत्तिके अनुसार बाहरी मनसे हम थोड़ा-सा (वह भी संसारमें 'साधु' कहलानेकी इच्छासे और मान-सम्मान पानेकी लालसासे) लोग-दिखाऊ भजन-पूजन करते हैं। ऐसे भजनको भजन कहना उसका उपहास करना है। हाँ, न होनेसे तो ऐसा भजन भी उत्तम ही है। हमारी मुख्य वृत्ति सदैव सांसारिक विषयोंके सेवनमें इस प्रकार लगी रहती है, मानो उसका वही स्वरूप हो। जब संसारके स्वार्थपूर्ण कामसे कुछ अवकाश मिला तो थोड़ा-सा भजन कर लिया। इस प्रकार संसार हमें एक ओर खींच रहा है और भजन दूसरी ओर। हमने स्वयं भी तो संसारका ही साथ दे रखा है। इसीलिये उसीकी विजय होती है और भजन दब जाता है। भगवान्की तो आज्ञा है कि सब समय मेरा स्मरण करते हुए ही युद्ध करो। (गीता ८।७) जब युद्ध-जैसे विकट स्थलमें जहाँ बाणोंके लगने और जीत-हार होनेका भय बना रहनेपर भी भगवान्का निरन्तर स्मरण बना रह सकता है, तब हमलोग इस संसार-समरमें क्यों न उन 'एक' का ही बराबर स्मरण करते हुए युद्ध (कर्म) करें।

तो फिर कारण क्या है कि संसारके विषय-भोगोंका इतना अधिक स्मरण होता है और वे हमारे इतने प्रिय और निकटस्थ हो गये हैं, मानो उनसे हमारा स्वाभाविक या जन्मजात सम्बन्ध हो? कारण यह है कि हम स्वयं भजनके महत्त्वको न समझकर भोगोंमें ही चरम सुख मान बैठे हैं। प्रेम तो दूर रहा, भजनमें हमारी आदर-बुद्धि भी नहीं है। विषयोंके लिये हम भजनको त्याग देते हैं। शरीरमें हमारी इतनी प्रगाढ़ प्रीति है कि चलते-फिरते स्वभावतः ही हम इसकी रक्षा करनेमें

तत्पर रहते हैं। जो वस्तु जिसे प्यारी होती है, अच्छी लगती है, उसकी स्मृति उसे स्वभावतः ही बनी रहती है। यदि मुख्य वृत्तिसे एकान्तमें कुछ समयतक निरन्तर भजन होता रहे तो यह सर्वथा सम्भव है कि आगे चलकर चित्त एक क्षणके लिये भी वहाँसे विचलित न हो। फिर तो पलभरके लिये भी भजनका विस्मरण नहीं हो सकता। गोपियोंकी तो यही दृढ़ स्थिति थी—

चलत-चितवत, दिवस जागत, सुपन सोवत रात।

हृदय ते वह स्याम मूर्ति छिन न इत-उत जात ॥

जागनेका क्या कहना, स्वप्नमें भी गोपियोंको श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु दीखती ही न थी। उनके संस्कार इतने श्रीकृष्णमय हो गये; मन, प्राण, चित्त और शरीर इतना अधिक श्रीकृष्णके रंगमें रँग गये कि उनके लिये श्रीकृष्णके अतिरिक्त कहीं कुछ रहा ही नहीं। यही अन्तर्मुखी—भगवन्मुखी वृत्ति है। जब हमारी सारी वृत्तियाँ अवगुणोंसे हटकर भगवान्की ओर स्वभावतः प्रवाहित होने लगे—नित्य-निरन्तर जाने लगे, तब समझना चाहिये कि हम भजनके पथपर हैं और इस प्रकार जो भजन होता है, वही सच्चा भजन है।

भजनमें चित्त ही मुख्य है। इस बातपर भगवान्ने बार-बार जोर दिया है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।

(गीता ९।२२)

चित्त भगवान्में लगे, वह परमात्मामें एकाकार हो जाय, ऐसी चेष्टा बराबर होती रहनी चाहिये। इसीका नाम 'अभ्यास' है। दूसरे जो चित्त विषयोंमें रमा रहता है, उसे वहाँसे बार-बार हटाते रहना ही 'वैराग्य' है। भगवान्में चित्त लगाना असम्भव नहीं; आवश्यकता है अभ्यास और वैराग्यकी।

चित्तकी वृत्तियोंके प्रवाहको, जो निरन्तर संसारकी ओर जा रहा है, वहाँसे हटाकर परमात्मामें लगाते रहना चाहिये। जहाँ मन परमात्मामें लगा कि फिर वहाँसे हटना

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

नहीं चाहेगा; क्योंकि यह तो परम आनन्द एवं परम शान्तिकी खोजमें है और ईश्वरमें लगेते ही उसे वह चिर अभिवांछित शान्ति और आनन्द मिलने लगता है। फिर मनका ऐसा स्वभाव बन जाता है कि वह भगवान्को छोड़कर एक क्षणके लिये भी कहीं नहीं जाता। उसका भटकना सदाके लिये बन्द हो जाता है। यही चित्तकी स्व-स्वरूपमें स्थिति है।

पर संसारसे मन हटे कैसे ? यह तो बुरी तरह इससे चिपटा हुआ है। इसका एक ही उपाय है, जिसे भगवान् ने गीतामें बतलाया है—अनित्य एवं सुखरहित संसारके सच्चे रूप जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि आदि दुःखोंके चित्र उसे बार-बार दिखलाये जायँ। संसारके इन दारुण चित्रोंको देखकर चित्त सहज ही उधरसे मुँह मोड़ लेगा और स्वतः परमात्माका अनुसंधान करने लगेगा; क्योंकि वास्तवमें वह संसारको केवल इसीलिये अपनाये हुए है कि उसमें उसे सुख भास रहा है। जब वह आँख पसारकर देख लेगा कि यहाँ केवल जलन-ही-जलन है तो फिर संसारके सुखोंका नाम ही न लेगा। जहाँसे मनको हटाना है, वहाँका दुःख और जहाँ लगाना है, वहाँका आनन्द उसे बार-बार बताया जाय। हमारे मनमें कुछ ऐसे संस्कार निश्चित हो गये हैं, जिनके कारण संसारके सुखोंमें ही हमारी समीचीन बुद्धि दृढ़ हो गयी है। मनने संसारके विषयोंमें तदाकारता स्थापित कर ली है, अतः वह उन्हें शीघ्र छोड़ना नहीं चाहता। मनुष्य जानता है कि संसारकी सभी वस्तुएँ विनाशशील हैं, अतः वे वियोगशील एवं दुःखदायी हैं; पर फिर भी संसारमें उसकी इतनी आसक्ति है कि एक क्षणके वियोगमें भी उसके प्राण निकलने लगते हैं और वह विषय-सुखोंके लिये हाय-हाय करने लगता है। उसे 'विष-भक्षण' की चाट-सी लग गयी है। वह बराबर ऐसा ही काम करता है, जिससे उसके दुःख बढ़ते रहते हैं और वह भवजालमें अधिकाधिक उलझता जाता है। भगवान् ने तो डंकेकी चोटपर कहा है—

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।

(गीता ९।३३)

‘इस अस्थायी और दुःखरूप संसारमें आकर मेरा

भजन करो।' जो वस्तु स्वयं अनित्य है, उससे नित्य सुखकी आशा करना निरी मूर्खता है। यहाँ तो बस दुःख-ही-दुःख है—जन्ममें दुःख, मृत्युमें दुःख, जरामें दुःख, व्याधिमें दुःख, धनमें दुःख और मान-सम्मानमें दुःख। इस पानीके बुलबुलेपर क्या मरना ? इस मृगतृष्णाके पीछे क्यों जान देना ? संसारमें कोई भी वस्तु ऐसी नहीं, जो नाशवान् न हो। फिर बार-बार जन्म लेना, दुःख सहना और मरना, फिर जन्म लेना, दुःख सहना और मरना—क्या इसी चक्करमें रहना हमें प्रिय है ?

संसारसे हटते ही मन मनमोहनसे जा मिलता है। यही इसका स्वभाव है। भगवान् तो समग्र सौन्दर्य, माधुर्य, ऐश्वर्य, लावण्य, श्री, ज्ञान, वैराग्य आदिके अनन्त भण्डार हैं। भगवान्‌में सारे सुख और सद्गुण तथा जगत्‌में सभी कुछ दुःख और दुर्गुणरूप हैं—ऐसी चेतना हो जानेपर मनको भगवान्‌में लगानेमें जोर नहीं देना पड़ता। उसे तो बस सुख चाहिये—संसारमें मिले या भगवान्‌में। जब वह जान लेगा कि संसारमें सुख है ही नहीं, दुःख-ही-दुःख है तो सहज ही भगवान्‌की ओर दौड़ेगा। पर यह केवल पाँच-सात मिनटके अभ्याससे नहीं होगा। इसके लिये सतत प्रयत्नशील होना पड़ेगा। संत-महात्माओंके चरित्र देखें और उनके साथ राजा-महाराजाओंके जीवनकी तुलना करें। पता नहीं, कितने राजे-महाराजे पृथ्वीपर पैदा हुए और मिट्टीमें मिल गये, पर आज हम उनका नामतक नहीं जानते और वे साधु-महात्मा, जिनके पास कौपीनके अतिरिक्त कुछ भी न था, संसारमें अपनी दिव्य छटा छिटकाकर चले गये और आज भी संसार उनके प्रकाशसे प्रकाशित है।

वह एक क्षण भी, जिसमें हमारा चित्त संसारकी ओरसे हटकर—उसे सर्वथा भुलाकर हरिमें लग जाता है, कितना दिव्य, आनन्दमय, शान्तिमय, प्रेममय और सुखमय हो जाता है ! यदि हम सदाके लिये संसारको भूलकर भगवान्‌में रम जायँ तो फिर आनन्दका क्या कहना ?

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।

तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥

(गीता ८।१४)

इसलिये बार-बार वृत्तियोंपर सतर्क दृष्टि रखते हुए अपने हृदयसे पृष्ठता रहे—‘किस ओर?’

अमित उमंगनि सों नाचैं शिव श्रृंगनि पै,
 घमकैं हुलास तैं कैलास घमकत है।
 भाल बाल इन्दुहू तैं झरि कै सुधा के बिन्दु,
 छहरि बिभूरि भरै ढंग थिरकत हैं ॥
 डम डम डमरू डमाक डमकत कर,
 उर पै बिसाल मुंड-माल लरकत है।
 गंग छिरकत, अंग-अंग थिरकत,
 नील गलमें गिरीसके भजंग सरकत है ॥

काशीके कुछ शिवलिंग

(श्रद्धेय पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

काशी तीनों लोकोंसे न्यारी मानी जाती है। यह पृथिवीपर स्थित होते हुए भी पृथिवीसे सम्बद्ध नहीं है और अधःस्थित होनेपर भी यह स्वर्ग आदि लोकोंसे उच्चतर है (काशीखण्ड १।२)। यहाँ जैसे चारों धाम, सातों पुरियाँ, सभी देवता और सभी तीर्थ निवास करते हैं, वैसे सभी लिंग भी यहाँ निवास करते हैं। अतः काशीके लिंगोंका विशद वर्णन तो सम्भव नहीं है, तथापि यहाँ कुछ लिंगोंका परिचय दिया जा रहा है।

काशी यात्राओंकी नगरी है। वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष आदि अनेक यात्राएँ की जाती हैं। इनमें नित्य-यात्रा बहुत ही आवश्यक मानी जाती है—

दृश्यो विश्वेश्वरो नित्यं स्नातव्या मणिकर्णिका।

(काशीखण्ड १००।१०५)

अतः विश्वेश्वर-लिंगसे यह परिचय प्रारम्भ किया जाता है।

विश्वेश्वर-लिंग (विश्वनाथजी)

शास्त्रोंमें बताया गया है कि जो मणिकर्णिका-तीर्थमें स्नानकर विश्वनाथजीका दर्शन करता है, वह शिवरूप हो जाता है, फिर उसका जन्म नहीं होता—

स्नात्वा मुमुक्षुर्मणिकर्णिकायां

मृडानि गङ्गाहृदये त्वदास्ये।

विश्वेश्वरं पश्यति योऽपि कोऽपि

शिवत्वमायाति पुनर्न जन्म॥

(सन्तकुमारसंहिता)

काशीखण्डमें तो यहाँतक कहा गया है कि जीवनभर समस्त शिवलिंगोंकी पूजासे जो फल मिलता है, वह केवल एक बार विश्वेश्वर-लिंगके पूजनसे प्राप्त हो जाता है—

सर्वलिंगार्चनात् पुण्यं यावज्जन्म यदर्थ्यते।

सकृद् विश्वेशमभ्यर्च्य श्रद्धया तदवाप्यते॥

(काशीखण्ड ९६।३०)

भगवान् विश्वनाथने स्वयं कहा है कि 'भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक और जनलोकमें कहींपर विश्वेश्वर-लिंगके समान कोई लिंग नहीं है (का०खं० ९९।४९)। यद्यपि मैं सम्पूर्ण लिंगोंमें वास करता हूँ, किंतु

विश्वेश्वर-लिंग मेरी सबसे उत्कृष्ट मूर्ति है (का०खं० ९९।२०)। इस विश्वेश्वर-लिंगके दर्शनके लिये सभी स्वयम्भू और स्थापित लिंग आते रहते हैं (का०खं० ९९।१९)। विश्वेश्वर-लिंगके स्मरणमात्रसे जन्मभरके पापोंका नाश हो जाता है (का०खं० ९९।२२)।'।

इस तरह भगवान् शंकरने विश्वेश्वर-लिंगकी भूरि-भूरि महिमा बताकर पार्वतीजीके साथ स्वयं इस लिंगकी पूजा की और वे इसीमें लीन हो गये (का०खं० ९९।६२)।

काशीकी नित्य-यात्रामें और चार लिंग हैं—(१) महेश्वर-लिंग (ज्ञानवापीके पश्चिम-दक्षिणकोण), (२) नन्दिकेश्वर-लिंग (यह लिंग गुप्त हो गया है), (३) तारकेश्वर-लिंग—तारालोकसे यह तारकेश्वर-लिंग ज्योतीरूपमें आकर ज्ञानवापीमें विराजमान है। इस लिंगके पूजनसे तारक-ज्ञानकी प्राप्ति होती है (का०खं० ६९।५३-५४) तथा (४) महाकालेश्वर-लिंग (ज्ञानवापीके दक्षिण-पूर्वकोणपर)।

विश्वनाथ-अन्तर्गृहीमें आये लिंग

अन्तर्गृहीकी यात्रा यथाशक्ति प्रतिदिन की जाती है। इस यात्रामें निम्नलिखित लिंगोंकी पूजा होती है। काशी-खण्डके सौवें अध्यायमें अन्तर्गृहीका विधान है।

१-मणिकर्णिकेश्वर—(यह लिंग गोमठ महल्लेके अभयाश्रममें है। मकान-नम्बर सी०के० ८।१२)। मणिकर्णिकेश्वरके दर्शनसे गर्भकी यन्त्रणा मिट जाती है। काशीखण्डसे पता चलता है कि भगवान् शंकरने स्वयं अन्तर्गृहके पूर्वद्वारपर इस लिंगकी स्थापना की थी।

२-कम्बलेश्वर—(कम्बलाश्वतरेश्वर) (गोमठ म०नं० सी०के० ८।१४)।

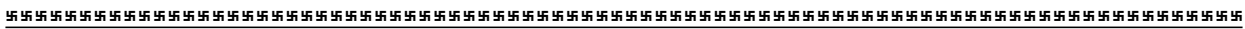
३-वासुकीश्वर—(सिन्धियाघाट, संकटाजीके दक्षिण म०नं० सी०के० ७।१५५)।

४-पर्वतेश्वर—(सिन्धियाघाट, म०नं० सी०के० ७।१५६)।

५-जरासन्ध्येश्वर—(मीरघाट गुप्त स्थानकी पूजा, म०नं० डी० ३।७९)।

६-समेश्वर—(मानमन्दिर, म०नं० डी० १६।३४)।

हरिश्चन्द्र-तीर्थमें पितरोंके तर्पण करनेसे उसके पूर्व-पुरुष १०० वर्षके लिये तृप्त हो जाते हैं और वाञ्छित फल प्रदान करते हैं। जो श्रद्धापूर्वक हरिश्चन्द्र-तीर्थमें स्नान करके हरिश्चन्द्रेश्वरको प्रणाम करता है,



तोड़नेका आदेश दे रही थी। मान्धाता ने अपना सन्देह ऋषियोंके सामने रखा। ऋषियोंने निर्णय दिया कि 'मान्धाता' आकाशवाणीका ही पालन करें। ऋषियोंने कहा कि तुम कुछ खाकर तैयार हो जाओ। हमलोग भी तुम्हारे साथ ही यात्रा करेंगे।

मान्धाता केदारघाट लौट आये और शीघ्रतामें मूँगकी खिचड़ी तैयार की। उसमें लकीर लगाकर आधा भाग अतिथिके लिये निश्चित कर दिया। किंतु इतना सबेरे अतिथिका मिलना कठिन हो रहा था। इसी बीच ऋषिलोग आ पहुँचे। मान्धाता असमंजसमें पड़ गये। यह बात उन्हें खल रही थी कि ऋषिलोग उनकी प्रतीक्षामें बैठे हैं। वे चिन्तित होकर भगवान्को पुकारने लगे। इसी बीच कोई पुरुष उन्हें दीख पड़ा। उसने आकर आतिथ्य स्वीकार कर लिया। जब मान्धाता उनके भागकी खिचड़ी निकालने लगे, तब उनकी अँगुलियाँ ही उसमें नहीं धँस रही थीं। वह तो ठोस पत्थर बन गयी थी। मान्धाता दोहरी चिन्तामें पड़कर भगवान्को पुकारने लगे। शीघ्र ही उन्हें दीख गया कि वह अतिथि प्रकाशपुंज बनकर उस खिचड़ीमें प्रविष्ट हो गया है। वे भगवान् शंकर ही थे। उन्होंने मान्धाताको प्रत्यक्ष दर्शन दिया। ऋषिलोग भी दर्शन पाकर हर्षसे उल्लसित हुए। भगवान्ने मान्धाताको तीन वरदान दिये—

(१) केदारखण्डमें भैरवी यातना नहीं भोगनी पड़ेगी।

(२) काशीका अपराध, शिवका अपराध और शिव-भक्तका अपराध—ये तीनों अपराध भी इस केदारलिंगके दर्शनसे निवृत्त हो जायँगे।

(३) उक्त तीनों अपराध करनेवालोंको केदार-लिंगका दर्शन नहीं होता था। तीसरे वरदानसे यह दर्शन सर्वसुलभ हो गया।

केदार-लिंगके दर्शनका बहुत महत्त्व है। पार्वतीजीने बताया है कि जो केदारेश्वरकी यात्राकी इच्छा करता है, उसके जन्मभरके संचित पाप उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं (का०खं० ७७।४)। यदि कोई घरमें भी रह करके सन्ध्याके समय तीन बार केदारका नाम ले लेता है तो उसे केदारकी यात्राका फल प्राप्त हो जाता है (का०खं० ७७।७)। केदारेश्वरके मन्दिरका शिखर देख वहाँका जल पी लेनेसे सात जन्मोंके पाप छूट जाते हैं—

दृष्ट्वा केदारशिखरं पीत्वा तत्रत्यम्बु च।

सप्तजन्मकृतात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः॥

(का०खं० ७७।८)

भौमवती अमावास्यामें यदि केदार-कुण्डपर श्राद्ध किया जाय तो गया-श्राद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं रहती—

भौमवारे यदा दर्शस्तदा यः श्राद्धदो नरः।

केदारकुण्डमासाद्य गयाश्राद्धेन किं ततः॥

(का०खं० ७७।५९)

केदारेश्वरकी अन्तर्गृहीमें लगभग सवा सौ शिवलिंग आते हैं, उनका प्रत्येकका विवरण विस्तारके भयसे नहीं दिया जा रहा है।

ओंकारेश्वर-लिंग

काशीमें अनेक लिंग हैं। यहाँ जितने लिंग स्थापित किये गये हैं, वे दृश्य हों अथवा अदृश्य, दुर्व्यवस्थामें पड़े हों या कालचक्रकी महिमासे टूट-फूट गये हों, सर्वथा पूजनीय हैं। भगवान् शंकरने इनकी गिनती की थी। वे सौ परार्ध संख्यातक ही गिन पाये थे (का०खं० ७३।२४-२५)।

ओंकारेश्वरका लिंग अमरकंटक-क्षेत्रसे लाया गया है। इनके प्रादुर्भावकी कथा है कि ब्रह्माजीने आनन्दवनमें उग्र समाधि लगाकर तपस्या की। हजार युग बीतनेपर सातों पातालकोंको फोड़कर दिग्-दिगन्तरोंको प्रकाशित करती हुई एक ज्योति प्रकट हुई। भूमिके फटनेसे जो चरचराहटकी आवाज हुई, उससे ब्रह्माकी समाधि खुल गयी। वह ज्योति ओंकाररूपमें थी। वही लिंग-रूपसे आज भी जनताका कल्याण कर रहे हैं। ब्रह्माण्डमें जितने तीर्थ हैं, वे सब वैशाखमासके शुक्ल पक्षकी चतुर्दशीको ओंकारेश्वरका दर्शन करने आते हैं—

ब्रह्माण्डोदरमध्ये तु यानि तीर्थानि सर्वतः।

तानि वैशाखभूतायामायान्योङ्कृतिदर्शने॥

(का०खं० ७४।१००)

भगवान्ने श्रीमुखसे कहा है—‘हे ब्रह्मन्! मैं ओंकारेश्वरलिंगमें सदा स्थित रहूँगा और पूजकोंको मोक्ष दिया करूँगा—

अस्मिल्लिङ्गे सदा ब्रह्मन् स्थास्यामीति विनिश्चितम्।

दास्यामि च सदा मोक्षमेतल्लिङ्गार्चकाय वै॥

(का०खं० ७३।१७३)

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

सौसे अधिक शिवलिंग

ओंकारेश्वरकी अन्तर्गृहीमें सौसे अधिक शिवलिंग आते हैं। कुछ प्रमुख लिंगोंका परिचय दिया जाता है—

मृत्युंजयेश्वर

वृद्धकालेश्वरसे दक्षिण अपमृत्युका नाश करनेवाला मृत्युंजय महादेव (मृत्य्वीश) नामक लिंग है। इस लिंगके दर्शन-पूजनसे घोर-से-घोर रोगादिकी निवृत्ति हो जाती है।

(का०खं० ९७।१२९)

वृद्धकालेश्वर

मृत्युंजय महादेवके मन्दिरमें ही वृद्धकालेश्वर-
लिंग है। इस लिंगकी पूजासे महाकाल भी निवृत्त हो

जाता है। यह लिंग कलियुगरूपी महाज्वालाका नाश कर देता है और जीवनको जीवन बना देता है—

वृद्धकालेश्वरं लिङ्गं महाकालनिवारणम् ।

कलिकालमहाज्वालाज्वालं जीवनजीवनम् ॥

(ब्रह्मवैवर्तपु०, त्रिस्थलीसेतु० पृ० ११७)

त्रिलोचनेश्वर-लिंग

पिलपिलातीर्थमें स्नान करके त्रिलोचन-महादेवका

दर्शन कर लेनेसे किसी बातका सोच नहीं रह जाता

(का०खं० ७५।१२)। त्रिलोचन-लिंग सब लिंगोंमें

उसी तरह श्रेष्ठ है, जैसे तारावलियोंमें चन्द्र (का०खं०

୭୫।୨୬)।

काशीमें गंगालाभसे मुक्ति

काशीमें एक साध्वी वृद्धा विधवा रहती थीं। हम उन्हें 'खालिसपुराकी माँ' के नामसे जानते हैं। सब प्रकारसे सम्बलहीन होकर केवल धर्मके ऊपर निर्भर रहकर वे काशीसेवन करती थीं। हमारी धारणा है कि वे धार्मिक जीवनमें बहुत ऊँची भूमिकापर स्थित थीं। कुछ समयतक उनके पास रहनेसे या उनके वाक्य श्रवण करनेसे मन एक अपूर्य धर्मभावसे पूर्ण हो जाता था। उनके जीवनकी निम्नलिखित घटना मैंने कई मित्रोंके साथ उन्हींके मुखसे सुनी थी। उसे उन्हींके शब्दोंमें यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

‘उस समय मेरे स्वामी जीवित थे। एक बूढ़ी बिल्ली कहींसे आकर हमारे घरमें रहने लगी। उसमें विशेषता यह थी कि वह हमारे साथ निरामिष आहार करती, मांस खानेके लोभमें दूसरी जगह कहीं नहीं जाती एवं एकादशीके दिन कुछ भी नहीं खाती थी। ज्यादातर मेरे पास पड़ी रहती। काल-क्रमसे उस बिल्लीकी मृत्यु हुई और उसे सड़कपर एक तरफ फिंकवा दिया गया, जिससे उसे डोम आकर उठा ले जायँ। पर मैंने सोचा, डोम उसे न जाने कहाँ ले जाकर फेंकेगा? ऐसी हिंसाशून्य सद्गुणी बिल्ली तो देखनेमें नहीं आती, क्या इसका शव गंगामें नहीं डाला जा सकता?

स्वामीसे जब मैंने यह कहा तो वे पहले कुछ नाराज-से हुए। बिना मतलब उन्हें एक दुर्गन्धमय मृत पशुको ले जाना ठीक नहीं मालूम पड़ा, परंतु पीछे मेरे हृदयकी वेदनाका अनुभवकर वे उसे ले जानेको राजी हो गये। मैंने बिल्लीको लाल कपड़ेके एक टुकड़ेमें लपेट दिया। वे उसको गंगामें बहा आये और आकर मुझसे बोले कि 'बिल्लीको तुम्हारी मनचाही गंगाप्राप्ति हो गयी।' इस घटनाके पाँच-छः दिन बाद अकस्मात् एक दिव्य मनुष्याकृति सधवा रमणी, जो लाल पाड़की साड़ी पहने थी और जिसकी माँगमें सेंदुर भरा था, मेरे समीप आकर बैठ गयी। मैंने पूछा—'बहन! तुम कौन हो ? उसने कहा—मैं वही बिल्ली हूँ, जिसे तुमने दया करके गंगाजीमें प्रवाहित करा दिया था; अब मैं मुक्त होकर जा रही हूँ, इसलिये जानेके पहले तुमसे मिलने आयी हूँ।' यह कहकर वह तुरंत अन्तर्धान हो गयी। मैं अपने आसनपर बैठी रह गयी। मैंने देखा, कितने ही देवी-देवता उसके आगमनकी प्रतीक्षामें बैठे हैं, न जाने किस पापसे बेचारीको कुछ दिनोंतक बिल्लीकी योगिनीमें रहना पड़ा!'

Hinduism Discord Server <https://dsc.gg/dharma> | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sh

भक्त रामनारायण

भक्त लाला रामनारायणजीकी जन्मभूमि तो पंजाब थी, परंतु वे बहुत समयसे आकर बस गये थे मोक्षदायिनी भगवान् शंकरकी काशीपुरीमें। उनके साथ पंजाबके कई लोग और भी आये थे। रामनारायणजी भगवान् शंकरके अनन्य भक्त थे। प्रतिदिन बहुत तड़के ही गंगा-स्नान करके वे भगवान् विश्वनाथजीके दर्शन करते और फिर घर लौटकर पार्थिवपूजन, शिवसहस्रनामका पाठ, महामृत्युंजयमन्त्रका भक्ति-श्रद्धापूर्वक जप करते थे। मध्याह्नतक उनका पूजा-पाठ चलता। उनकी पत्नी शारदा और पुत्र शम्भुशरण भी भगवान् शिवजीके बड़े भक्त थे। कल्याणकारी 'नमः शिवाय' का अनवरत जप तो परिवारभरका स्वभाव ही बन गया था। आशुतोष भगवान् शंकरकी कृपासे रामनारायणजीका व्यापार चमका और वे थोड़े ही दिनोंमें सुख-समृद्धिसे सम्पन्न हो गये।

धनसे अभिमान और स्वार्थ बढ़ा करता है, परंतु श्रीशंकरजीकी कृपासे यहाँ सर्वथा विपरीत परिणाम हुआ। श्रीरामनारायणजीके ज्यों-ज्यों सुख-समृद्धि और धन-ऐश्वर्य बढ़ा, त्यों-ही-त्यों उनमें नम्रता, विनय, त्यागकी भावना और अन्यान्य दैवी-सम्पत्तिके गुण बढ़ते गये। सत्पुरुषोंके पास आये हुए न्यायोपाजित धनका सुकृत और सेवामें ही सदुपयोग हुआ करता है, इस सिद्धान्तके अनुसार रामनारायणजीका धन सत्कार्योंमें लगने लगा। इससे उनकी कीर्ति भी बढ़ी।

पंजाबसे उनके साथ आये हुए लोगोंमें एक लाला दयालीराम थे। वे रामनारायणजीकी उन्नतिसे मन-ही-मन जला करते। यद्यपि रामनारायणजी हर तरहसे स्वाभाविक ही उनके साथ बड़ी उदारता और प्रीतिका व्यवहार करते, फिर भी लाला दयालीरामकी द्वेषबुद्धि बढ़ती गयी। श्रीरामनारायणजीको इस बातका कुछ भी पता नहीं था, परंतु दबी आग कबतक रह सकती है। ईंधन और हवाका झोंका पाते ही धधक उठती है। इसी प्रकार मौका पाते ही लाला दयालीरामकी द्वेषाग्नि भड़क उठी। अब तो वे खल्लमखल्ला रामनारायणजीसे वैर

करने लगे और भाँति-भाँतिसे उन्हें सताने, परेशान करने और हानि पहुँचानेका प्रयत्न करने लगे। गालियाँ देने, गुण्डोंसे पिटवाने, आग लगा देने और व्यापारमें नुकसान पहुँचाने आदिके रूपमें वैर-सम्पादनके भाँति-भाँतिके प्रयत्न दयालीरामकी ओरसे चलने लगे!

एक दिन रामनारायणजी गंगास्नान करके आ रहे थे। दयालीरामने अचानक स्वयं आकर उनके दो जूते लगा दिये। रामनारायणजी हँसते हुए चले गये, परंतु उन्हें अपने साथी दयालीरामकी इस गिरी हुई हालतपर बड़ी दया आयी। वे उनकी दुःस्थितिके कारण दुखी हो गये। अपने अपमान और जूतोंकी मारके कारण नहीं, परंतु दयालीरामकी मानसिक दुर्भावनाके कारण वे चिन्तातुर हो गये। उन्होंने सोचा, कैसे दयालीरामजीकी वृत्ति ठीक हो। उन्होंने मन-ही-मन उनसे विशेष प्रेम करनेका संकल्प किया और संकल्पानुसार कार्य भी आरम्भ कर दिया। यह नियम है कि जब हम किसीके सम्बन्धमें अपने मनमें द्वेष और वैरके विचार रखते हैं, तब वे हमारे विचाररूपी राक्षस उसकी ओर जाते हैं और उसके मनमें भी द्वेष और वैरके विचार उत्पन्न करके उनको फिर अपनी ओर खींचते हैं। स्वार्थ, क्रोध, हिंसा, मद और लोभ आदिके विचारोंका भी ऐसा ही असर होता है। इस प्रकार परस्परमें अशुभ विचार बढ़ते रहकर तमाम वातावरणको और तमाम जीवनको अशुभ बना देते हैं। इसके बदलेमें यदि किसीके प्रति प्रेमके विचारोंका पोषण हो तो वे भी वहाँतक पहुँचते हैं और उसके मनमें उभड़े हुए द्वेषको दबाकर प्रेमके भाव पैदा करते हैं। यों यदि बार-बार प्रेमके विचारोंको बढ़ा-बढ़ाकर भेजा जाय तो अन्तमें उसका द्वेष मिट जाता है और वह भी प्रेम करने लगता है। प्रेम प्रेमका और द्वेष द्वेषका जनक है। लाला दयालीरामके मनमें वैर था, परंतु रामनारायणजीके मनमें अत्यन्त सुदृढ़ और महान् प्रेम भरा था। अतएव दयालीरामके द्वेषके विचारोंका रामनारायणजीके प्रेमके बड़े हुए विचारोंपर कोई असर नहीं हुआ; बल्कि वे

देखा—भगवान् वृषभवाहन सामने उपस्थित हैं। बड़ी ही उज्ज्वल कर्पूरधवल कान्ति है, सिरपर पिंगल जटाजूट है। गलेमें वासुकि शोभा पा रहे हैं। एक हाथमें त्रिशूल, दूसरेमें डमरू, तीसरेमें रुद्राक्षकी माला है और चौथे हाथसे अभयदान दे रहे हैं। कटिमें रीछकी छाल पहने हैं। विशाल नेत्रोंसे मानो कृपासुधाकी वर्षा हो रही है। होठोंपर मुसकान है। देवदेव श्रीशंकरजीके दर्शन पाकर लाला श्रीरामनारायणजी कुतार्थ हो गये। उनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु

श्रीदयालीरामके मनमें पूर्वजन्मकी स्मृति आ गयी। वे 'नमः शिवाय' मन्त्रका जाप तथा भक्तिपूर्वक श्रीशंकरजीकी उपासनामें लग गये। रामनारायणजीके साथ उनका प्रेम अटूट हो गया। दोनों साथी भगवान् श्रीविश्वनाथजीकी सेवामें समर्पण करके कृतकृत्य हो गये।

[श्रीपूर्णचन्द्रकृत उद्भटसागर]

ज्योतिर्लिंग-परिचय—

द्वादश ज्योतिर्लिंगोंके अर्चा-विग्रह

इस विश्वमें जो कुछ भी दृश्य देखा जाता है तथा जिसका वर्णन एवं स्मरण किया जाता है, वह सब भगवान् शिवका ही रूप है। करुणासिन्धु अपने आराधकों, भक्तों तथा श्रद्धास्पद साधकों और प्राणिमात्रकी कल्याणकी कामनासे उनपर अनुग्रह करते हुए स्थल-स्थलपर अपने विभिन्न स्वरूपोंमें स्थित हैं। जहाँ-जहाँ जब-जब भक्तोंने भक्तिपूर्वक भगवान् शम्भुका स्मरण किया, तहाँ-तहाँ तब-तब वे अवतार लेकर भक्तोंका कार्य सम्पन्न करके स्थित हो गये। लोकोंका उपकार करनेके लिये उन्होंने अपने स्वरूपभूत लिंगकी कल्पना की। आराधकोंकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् शिव उन-उन स्थानोंमें ज्योतीरूपमें आविर्भूत हुए और ज्योतिर्लिंग-रूपमें सदाके लिये विद्यमान हो गये। उनका ज्योतिःस्वरूप सभीके लिये वन्दनीय, पूजनीय एवं नमनीय है। पृथिवीपर वर्तमान शिवलिंगोंकी संख्या असंख्य है तथापि इनमें द्वादश ज्योतिर्लिंगोंकी प्रधानता है। इनकी निष्ठापूर्वक उपासनासे पुरुष अवश्य ही परम सिद्धि प्राप्त कर लेता है अथवा वह शिवस्वरूप हो जाता है। शिवपुराण तथा स्कन्दादि पुराणोंमें इन ज्योतिर्लिंगोंकी महिमाका विशेषरूपसे प्रतिपादन हुआ है। यहाँतक भी कहा गया है कि इनके नाम-स्मरणमात्रसे समस्त पातक नष्ट हो जाते हैं, साधक शुद्ध निर्मल अन्तःकरणवाला हो जाता है और उसे अपने सत्य-स्वरूपका बोध हो जाता है तथा वह विशुद्ध बोधमय, विज्ञानमय होकर सर्वथा कृतार्थ हो जाता है। यहाँ इन्हीं द्वादश ज्योतिर्लिंगोंका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है—

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम् ।

उज्जयिन्यां महाकालमोंकारे परमेश्वरम् ॥

केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशंकरम् ।

वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे ॥

वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने ।

Induism Discord Server <https://dsc.gg/indusm>

द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्।

सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः सर्वसिद्धिफलं लभेत् ॥

(शिवपुराण-कोटिरुद्रसंहिता १।२१-२४)

अर्थात् (१) सौराष्ट्र-प्रदेश-(काठियावाड़)-में सोमनाथ, (२) श्रीशैलपर मल्लिकार्जुन, (३) उज्जैनमें महाकाल, (४) ओंकारमें परमेश्वर, (५) हिमाचलपर केदार, (६) डाकिनीमें भीमशंकर, (७) काशीमें विश्वेश्वर, (८) गौतमीतटपर त्र्यम्बक, (९) चिताभूमिमें वैद्यनाथ, (१०) दारुकावनमें नागेश, (११) सेतुबन्धमें रामेश्वर और (१२) शिवालयमें स्थित घुश्मेश्वर—इन बारह ज्योतिर्लिंगोंके नामोंका जो प्रातःकाल उठकर पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और समस्त सिद्धियोंको प्राप्त कर लेता है। आगे इन्हींका संक्षेपमें वर्णन दिया जा रहा है—

(१) श्रीसोमनाथ



श्रीसोमनाथ ज्योतिर्लिंग गुजरात प्रान्तमें प्रभास-
क्षेत्र-(काठियावाड़)-के विरावल नामक स्थानमें स्थित
हैं। यहाँके ज्योतिर्लिंगके आविर्भावके विषयमें पुराणोंमें
एक रोचक कथा प्राप्त होती है। शिवपुराणके अनुसार
दक्ष प्रजापतिकी सत्ताईस कन्याओंका विवाह चन्द्रमा
(सोम)-के साथ हुआ था, इनमेंसे चन्द्रमा रोहिणीसे
विशेष अनुराग रखते थे। उनके इस कार्यसे दक्ष

प्रजापतिकी अन्य कन्याओंको बहुत कष्ट रहता था। उन्होंने अपनी यह व्यथा-कथा अपने पिताको सुनायी। दक्षप्रजापतिने इसके लिये चन्द्रदेवको बहुत प्रकारसे समझाया, किंतु रोहिणीके वशीभूत उनके हृदयपर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अपनी अन्य कन्याओंके साथ विषमताका व्यवहार देखकर कुपित हो दक्षने चन्द्रमाको क्षय-रोगसे ग्रस्त हो जानेका शाप दे दिया। इस शापके कारण चन्द्रदेव तत्काल क्षयग्रस्त हो गये। उनके क्षयग्रस्त हो जानेसे सुधा-किरणोंके अभावमें सारा संसार निष्प्राण-सा हो गया। क्षयग्रस्त होनेसे दुखी चन्द्रमाने ब्रह्माजीके कहनेपर भगवान् आशुतोषकी आराधना की। चन्द्रमाने छः महीनेतक स्थिर चित्तसे खड़े रहकर भगवान् शिवके मृत्युंजय स्वरूपका ध्यान करते हुए दस करोड़ मृत्युंजय मन्त्रका जप किया। तब भगवान्ने प्रसन्न होकर दर्शन दिया और चन्द्रमाको अमरत्व प्रदान करते हुए मास-मासमें पूर्ण एवं क्षीण होनेका वर दिया। इस प्रकार भगवान् आशुतोष सदाशिवकी कृपासे चन्द्रमा रोगमुक्त हो गये और दक्षके वचनकी भी रक्षा हो गयी। तदनन्तर चन्द्रमा तथा अन्य देवताओंके द्वारा प्रार्थना करनेपर भगवान् शंकर उन्हींके नामसे ज्योतिर्लिंगके रूपमें वहाँ स्थित हो गये और सोमनाथके नामसे तीनों लोकोंमें विख्यात हुए। सोमनाथका पूजन करनेसे वे उपासकके क्षय तथा कुष्ठ आदि रोगोंका नाश कर देते हैं। वहीं सम्पूर्ण देवताओंने सोमकुण्ड (चन्द्रकुण्ड) -की भी स्थापना की है, जिसमें शिव और ब्रह्माका सदा निवास माना जाता है। यह कुण्ड इस भूतलपर पापनाशन तीर्थके रूपमें प्रसिद्ध है। जो मनुष्य इसमें स्नान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। क्षय आदि जो असाध्य रोग होते हैं, वे सब उस कुण्डमें छः मासतक स्नान करनेमात्रसे नष्ट हो जाते हैं। मनुष्य जिस फलके उद्देश्यसे इस उत्तम तीर्थका सेवन करता है, उस फलको सर्वथा प्राप्त कर लेता है—इसमें संशय नहीं है।

ऐतिहासिक विवरणके अनुसार सोमनाथका सुप्रसिद्ध शिव-मन्दिर काठियावाड़के प्रभासपट्टन नामक समुद्रतटीय स्थलपर गुजरातके चालुक्योंद्वारा निर्मित कराया गया था। इस मन्दिरमें अपार धन-सम्पत्ति थी। दस सहस्र ग्रामोंकी आय इस मन्दिरको प्राप्त होती थी। मन्दिरके उपास्य देव (भगवान् सोमनाथ)-की पूजाके लिये उत्तर भारतसे प्रतिदिन गंगाजल वहाँ ले जाया जाता था। इस मन्दिरमें दैनिक पूजन-कृत्यके सम्पादनके लिये एक सहस्र ब्राह्मण पुजारी नियुक्त थे, साथ ही ३५० गायकों एवं नर्तकियोंकी भी सेवा मन्दिरको समर्पित थी।

इस प्रभूत धन-वैभवसम्पन्न मन्दिरपर सन् १०२४ ई० में गजनीके सुलतान महमूदने आक्रमणकर इसे अपने अधिकारमें कर लिया। मन्दिरकी अपार सम्पत्ति तो उसने लूट ही ली, विशाल शिवलिंगके टुकड़े-टुकड़े भी कर दिये।

गुजरातके राजा भीमदेव प्रथमने पुनः पुराने सोमनाथ मन्दिरके स्थानपर जो ईंटों और लकड़ीसे बना था, पत्थरका नया मन्दिर बनवाना प्रारम्भ किया, बादमें सिद्धराज जयसिंह, विजयेश्वर कुमार पाल तथा सौराष्ट्रके खंगारराजने भी इसका जीर्णोद्धार कराकर इसे पुनः समृद्ध किया, परंतु मुसलमान शासकों अलाउद्दीन खिलजी, मुजफ्फरशाह और अहमदशाहकी धर्मान्धताका यह बराबर शिकार होकर नष्ट-भ्रष्ट होता रहा। देशके स्वतन्त्र होनेपर सोमनाथके मूल मन्दिरके स्थानपर ही एक भव्य मन्दिरका निर्माण कराया गया, जिसका तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसादने उद्घाटन किया।

इस मन्दिरके पास ही इन्दौरकी महारानी अहल्याबाई होल्करने भी भगवान् सोमनाथका एक मन्दिर बनवाया है। इसी पवित्र प्रभास-क्षेत्रमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने अपनी लीलाओंका संवरण किया था। भगवान् सोमनाथका ज्योतिर्लिंग गर्भगृहके नीचे एक गुफामें है, जिसमें निरन्तर दीप जलता रहता है। [क्रमशः]

(श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')

चलनेवाले तरुणने चारों ओर देखा। उसे स्मरण आया—

दर्शन करने जो चला है उसकी आयु पूरी हो जाय मध्यमें, तो भी मृत्युको प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।’ वृद्ध कुछ पद लौट आये और स्नेहपूर्वक उन्होंने उस पुरुषके कन्धपर हाथ रख दिया— ‘तीर्थयात्राका अर्थ कहीं जाकर जलमें डुबकी लगा लेना और किसी प्रतिमामात्रके दर्शन कर लेना नहीं है। यात्राका अर्थ है तितिक्षा—कष्ट-सहिष्णुता, त्याग, भगवत्स्मरण और एकमात्र प्रभुका आश्रय। जो प्रभु श्रीशैलपर विराजमान हैं, वे ही प्रत्येक प्राणीमें, प्रत्येक वन्य पशुमें हैं। हमपर आपत्ति आती है तब,

चार पुरुषार्थ

(डॉ० श्रीकृष्णजी द० देशमुख)

[अनुवाद—श्रीमिलिन्दजी काले]

यह विषय जिसे हमें समझना है, बहुत बड़े विस्तारवाला है। अभ्युदय और निःश्रेयस भारतीय संस्कृतिके दो प्रमुख अंग हैं। अभ्युदयमें प्रपंचके व्यावहारिक सुखोंका, वैभवका विचार है और निःश्रेयसमें पारमार्थिक सुख और वैभवका दर्शन होता है। ये दोनों सुख और वैभव साथ-साथ प्राप्त हों, ऐसी आशा-आकांक्षा पुरातन समयसे भारतीय जीवनपद्धतिमें की गयी है। कठोपनिषद्में अभ्युदयको प्रेय और निःश्रेयसको श्रेय कहा है। इसका अर्थ यह हुआ कि हम भारतीयोंका जीवन इन दोनों रंगोंसे भरा हो—ऐसी व्यवस्था, योजना स्पष्टरूपसे नजर आती है। इसी योजना या व्यवस्थाके अन्तर्गत चारों पुरुषार्थोंकी रचनाको समझना चाहिये।

ये चार पुरुषार्थ हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इनमेंसे धर्म और मोक्षका सम्बन्ध निःश्रेयससे है और अर्थ एवं कामका सम्बन्ध अभ्युदयके साथ है। जो अर्थ पुरुषको प्राप्त करना है, उसे पुरुषार्थ कहते हैं। यहाँ पुरुष शब्द स्त्रीलिंग और पुल्लिंग दोनोंके लिये है। यह बात पुरुष शब्दकी उत्पत्तिका विचार किये बिना समझमें नहीं आयेगी। ‘**पुरि शयनात् पुरुषः।**’ पुर अर्थात् शहर और शहरमें रहनेवाला हुआ पुरुष। यह नौ द्वारोंवाला मानव-शरीर ही पुर माना गया है, जिसमें रहनेवाले जीवात्माको ‘पुरुष’ नाम दिया गया है। अतः स्त्री हो या पुरुष दोनोंमें जीवात्मा या पुरुष रहता है। ऐसा कोई भेद नहीं है कि पुरुषके शरीरमें रहनेवालेको आत्मा और स्त्रीके शरीरमें रहनेवालेको आत्मी कहेंगे। यदि शब्द और उसके पीछे रहनेवाली संकल्पना ठीकसे समझ लें तो वे शब्द भारी-भरकम नहीं लगते और इसलिये फिर उनका डर भी नहीं लगता। अब अर्थ शब्दको भी समझ लेते हैं। अर्थ शब्दके एक ‘पैसा’ और दूसरा ‘मतलब’ ऐसे दो अर्थ हैं। ‘आपकी बातका क्या अर्थ है?’ इस प्रश्नवाचक वाक्यमें तीसरा अर्थ नजर आता है। ‘आपकी बातके पीछे आपकी क्या भूमिका है’ ऐसा ध्वन्यर्थ इस प्रश्नसे निकलता है, परंतु यहाँ (इस आलेखमें) अर्थ शब्दका अभिप्राय ऊपर बतलाये अर्थोंमें से कोई भी नहीं है।

है। यहाँ अर्थ शब्दका मतलब है प्राप्तव्य, जो अर्जित करने जैसा है और जिसे अर्जित करना चाहिये—उसे ही यहाँ अर्थ कहा गया है। वही मनुष्य जन्मका वास्तविक ध्येय है। इस प्रकार चार पुरुषार्थ हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। यह शब्दक्रम-रचना बड़ी मार्मिक या मर्मस्पर्शी है। इसे देखते ही यह ध्यानमें आयेगा कि अर्थ और काम धर्म और मोक्षके बीच घिरे हुए हैं। यह क्रम निश्चित रूपसे हमें कुछ सूचित करता है कि अर्थ धर्मकी मर्यादामें होना चाहिये और धर्मकी मर्यादामें काम मोक्षके आड़े नहीं आता। ईमानदारीसे, लगनसे अभ्यास करनेवाले संवेदनशील साधकको ही यह महसूस होगा। हम सभी संवेदनशील तो जरूर हैं, लेकिन उसका उपयोग मान, अपमान, यश, अपयश—जैसी बातोंमें ही करते हैं। चार पुरुषार्थोंकी यह रचना आजकल भरभराकर गिर गयी है। इनमेंसे अर्थ और कामकी गुण्डागर्दी इतनी बढ़ गयी है कि अर्थने धर्मको और कामने मोक्षको हमारे जीवनकी सीमासे बाहर कर दिया है, जीवनसे दरबंद कर दिया है। उनका अगर फिरसे हम पुनर्निर्माण कर पायें तो यह एक बहुत बड़ा काम होगा।

आइये, अब हम इन चारों संकल्पनाओंके स्वरूपको समझ लें।

ધર્મ

हमें जो अर्थ ज्ञात है, उससे धर्म शब्दका मूल अर्थ बहुत अलग है। 'धर्म' शब्दके उच्चारणके साथ ही हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, इसाई आदि सम्प्रदायोंकी याद हमें आती है। भारतमें धर्म नामक संकल्पनाका जिस समय उदय हुआ, उस समय ये सम्प्रदाय मूलतः अस्तित्वमें ही न होनेके कारण धर्म शब्दपर हिन्दुत्व सम्प्रदायको अकारण ही थोप दिया गया है। यह जुड़ा हुआ अर्थ यद्यपि अभ्यागत है, फिर भी परिस्थितियाँ ऐसी हो गयी हैं कि उसे स्वीकार करनेके अलावा कोई चारा नहीं है। यदि हम उसे स्वीकार नहीं करते तो हमारी संस्कृतिका अस्तित्व खतरमें पड़ जायगा।

शायद इसके लिये लोगोंको कोई दिक्कत नहीं होगी।

धर्म शब्दका दूसरा अर्थ कर्तव्य है। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं—

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितमर्हसि ।

धर्म्याद्धि यद्धाच्छेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥

(गीता २।३१)

अर्थात् स्वधर्मका विचार करनेपर भी तुम्हारा इस तरह डाँवाडोल होना उचित नहीं है। क्षत्रियके लिये युद्धसे श्रेयस्कर और धर्मयुक्त ऐसा दूसरा कल्याणकारी कछ भी नहीं है।

क्षात्रवृत्तिके लिये जो कर्तव्य है, उसे ही यहाँ ‘धर्म’ कहा है। इस प्रकारसे कितने ही धर्म कर्तव्यके रूपमें हम सबके लिये बतलाये गये हैं। उदाहरणके रूपमें पितृधर्मको लें। मुझे दो संतानें हैं। उनके लिये सारी जिम्मेदारियाँ धर्म-कर्तव्य करना आवश्यक है। उन्हें अगर मैं नहीं करता तो मैं अधर्मी कहलाऊँगा। उनके शरीर और मनकी योग्य रीतिसे परवरिश की जा रही है या नहीं, इसे देखना मेरा धर्म है। मुझे मेरे धर्मका पालन करना होगा। पुत्रधर्म, पतिधर्म, समाजधर्म, व्यवसायधर्म, राष्ट्रधर्म इस तरह अनेक कर्तव्य मेरे लिये निश्चित किये गये हैं। उन्हें पूरा करनेसे कतराकर यदि मैं ईश्वरके सम्मुख खड़ा हो जाऊँ तो क्या ईश्वर मेरी ओर देखेंगे?’

१. परस्त्रीकी कामना न करें।

२. पराये धनकी कामना न करें।

३. परनिन्दासे पर्णतया बचें।

तीन विधि—

१. संत-वचनोंपर विश्वास रखकर उनके अनुसार आचरण करें।

२. जीवनकी प्रत्येक अवस्थामें नामस्मरण करें।

3. हमेशा सत्यकी राहपर चलें।

संत पूछते हैं कि 'उपरोक्त विधि-निषेधोंका पालन करनेसे किसीका क्या बिगड़ेगा?'

ऐसे अनुशासित जीवनको धार्मिक जीवन कहते हैं। धर्माचरणकी परम्परागत कल्पनामें बहिरंगका विचार अधिक है। टीका, माला, धोती, अँगरखा, टोपी, अँगोछा आदिका सम्बन्ध संस्कृतिके साथ अधिक है। विवाह, यज्ञोपवीत आदि संस्कार संस्कृति और धर्म दोनोंसे सम्बन्धित हैं। स्नान, सन्ध्या आदि कर्म यदि शास्त्रीय पद्धतिसे कर पायें तो वह एक अच्छी बात होगी, लेकिन यदि ये कर्म भी किन्हीं कारणोंसे सम्भव नहीं हों तो उसके लिये भी कलियुगके योग्य पर्याय संत तुकारामने बतलाया है। वे कहते हैं—

नामें म्यान-संख्या केले क्रियाकर्म।

त्याचा भवक्षम निवारिला ॥

ये सारे धर्म या कर्तव्य हमपर थोपे हुए नहीं हैं, बल्कि वे हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवनमें एक सुसूत्रता और सुसंबद्धताका निर्माणकर जनजीवनको सुखी, सम्पन्न और संतोषी बनानेके साधन हैं, लेकिन फिर वे बोझस्वरूप क्यों लगते हैं? इसका सिर्फ एक यही कारण है कि उसके लिये जो मनका दह निश्चय

मनुष्य जन्मकी सार्थकता

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

विधाताने मनुष्यको अन्य योनियोंके प्राणियोंसे भिन्न, विशेष विभूतियाँ देकर उसकी रचना की है। यह हमारी अपनी पसन्द है कि हम पशु-योनिकी भाँति खायें-पीयें, सुख-दुःख भोगें, विवश होकर जियें और जन्म-मरणके चक्रमें फँसे रहें अथवा विधाताद्वारा प्रदत्त विशेषताओंका सदुपयोग करके चिन्मय रसरूप अविनाशी जीवन प्राप्त करके अपने मनुष्य जन्मको सोद्देश्य (Purposeful) बनायें।

इसके लिये फिर हमें अपनेको 'मानव' स्वीकार करना होगा। वस्तुतः मानव किसी आकृतिविशेषका नाम नहीं है। जो प्राणी अपनी निर्बलता एवं दोषोंको देखने और उन्हें निवृत्त करनेमें तत्पर है, वही वास्तवमें मानव कहा जा सकता है।

दूसरे शब्दोंमें 'जिस व्यक्तिमें मानवता है, वही मानव है।' मानवताके तीन लक्षण हैं—

(१) विचार, भाव और कर्मकी भिन्नता होते हुए भी स्नेहकी एकता (प्रेम)।

(२) अभिमानरहित निर्दोषता (त्याग)।

(३) अधिकारका त्याग एवं दूसरोंके अधिकारकी रक्षा (सेवा)।

व्यक्ति जिस समाजमें रहता है, उससे उसका अविभाज्य सम्बन्ध है, जिसका क्रियात्मक रूप ही व्यक्तिद्वारा समाजकी सेवा है—अर्थात् व्यक्ति अपने तीन विशिष्ट गुणोंद्वारा समाजकी सेवा कर सकता है—

(१) व्यक्तिकी निर्दोषतासे समाज निर्दोष होता है।

(२) स्नेहकी एकतासे संघर्षका नाश होता है।

(३) अपने अधिकारके त्याग और दूसरोंके अधिकारकी रक्षासे सुन्दर समाजका निर्माण होता है।

इन तीनोंद्वारा अपना भी कल्याण होता है।

मानवमें ही बीजरूपसे परम शान्ति, परम स्वाधीनता और परम प्रियताकी माँग विद्यमान रहती है। कर्तव्य-परायणताके बिना शान्ति नहीं मिल सकती, अपनेमें ही सन्तुष्ट हुए, अचाह हुए बिना स्वाधीनता नहीं मिलेगी और प्रियताके लिये नित्य विद्यमान, परमतत्त्व, प्रेम-स्वरूप ईश्वरका अपना आत्मिय मानना ही होगा, जो

वह पहलेसे ही है।

मनुष्य जीवनका अपना महत्त्व है। इसे भूल जानेका ही यह परिणाम होता है कि व्यक्ति अपना मूल्यांकन सांसारिक उपलब्धियों, वस्तु, योग्यता, सामर्थ्य एवं परिस्थितिके आधारपर करने लगता है, जिससे वह इनकी दासतामें आबद्ध हो जाता है, जिसका परिणाम दुःख और दारिद्र्य होता है। दरिद्र वही है, जिसमें लोभ है।

ऐसे सोचके आधारपर सभीका जीवन सार्थक हो ही नहीं सकता। सभी टाटा, बिड़ला, अम्बानी हो नहीं सकते; सभी राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री, मन्त्री, ऊँचे पदाधिकारी, बड़े वैज्ञानिक, इन्जीनियर, डॉक्टर आदि बन नहीं सकते। फिर तो अधिकांशको निराशा ही हाथ लगेगी और अपना जीवन व्यर्थ जान पड़ेगा।

जबकि वास्तविकता यह नहीं है। केवल जीवनके महत्त्व एवं उसकी सार्थकताके प्रति दृष्टिकोण सही करना है। वास्तवमे बड़े-छोटेका कोई प्रश्न ही नहीं है, हर व्यक्तिका जीवन सार्थक एवं उद्देश्यपूर्ण सिद्ध होगा। यदि हम यह देखें कि क्या हमने अपनेको उपयोगी बना लिया है। हम उपयोगी कैसे होते हैं—

(१) सेवाद्वारा संसारके लिये,

(२) त्यागद्वारा अपने लिये और

(३) प्रेमद्वारा प्रभुके लिये।

इसे अपनाकर अपनेको उपयोगी बनानेमें हम पूर्णतया समर्थ और स्वाधीन हैं। सेवा सेवा ही होती है, कोई बड़ी या छोटी नहीं होती। निकटवर्ती जन समाजकी यथाशक्ति क्रियात्मक सेवा करें और सद्भावद्वारा सभीकी भावात्मक सेवा करें।

अपनेको उपयोगी बनाना ही मनुष्य-जीवनकी सार्थकता है।

मानव-जीवनकी सार्थकता क्या है? पूजनीया माँ अमृतानन्दमयीके शब्दोंमें 'हम शरीर स्वस्थ रखनेके लिये व्यायाम करते हैं, लेकिन हृदयको व्यायाम देना भूल जाते हैं। हृदयका व्यायाम दुःखित और पीड़ित लोगोंको उनके स्तरसे उठाने, उनका सेवान्वित होना है।'

[प्रेषक—श्रीकूँवरसिंहजी]

इतना कहकर भगवान् शंकरने माता सुरभि की परिक्रमा की और उनकी देहमें प्रवेश कर गये। गोमाता पवित्र ब्राह्मणोंका ही दूसरा रूप हैं, अतः उनका शाप गोमातापर प्रभावी नहीं हुआ और भगवान् शंकरके शरीरकी जलन शान्त हो गयी। माता सुरभिने उन्हें अपने गर्भमें धारण कर लिया। इधर शिवजीके न होनेसे सारे जगत्में हाहाकार मच गया। तब देवताओंने स्तवन करके ब्राह्मणोंको प्रसन्न किया और उनसे शिवजीका पता लगाकर वे गोलोक पहुँच गये। वहाँ उन्होंने सूर्यके समान तेजस्वी 'नील' नामक सुरभीसुतको देखा। वे सब जान गये कि सुरभीसुतके रूपमें भगवान् शिव ही

(महा० अनु० १३३।६-७)



संतवाणी—

जीवनोपयोगी बातें

❖ यदि कुछ माँगते हुए भगवान्की भक्ति करोगे तो भगवान् उतना ही देंगे, जितना आपने माँगा है, परंतु यदि बिना माँगे (निःस्वार्थ भावसे) भक्ति करोगे तो भगवान् इतना देंगे कि आपसे सँभाले नहीं सँभलेगा।

❖ ईश्वर हमें वह नहीं देता जो हमें अच्छा लगता है, अपितु वह देता है जो हमारे लिये अच्छा है।

❖ मनुष्यको केवल धर्म कमानेका प्रयत्न करना चाहिये; क्योंकि जहाँ धर्म (नारायण) है, वहाँ धन (लक्ष्मी) तो स्वतः आ जाता है।

❖ जिसका प्रभुमें दृढ़ विश्वास है, उसके लिये ज्योतिष आदि शास्त्रका कोई महत्त्व नहीं है; क्योंकि उसके तो तीनों काल (वर्तमान, भूतकाल एवं भविष्य) स्वयं भगवान् सँभालते हैं।

❖ किसी अभावग्रस्तको देखकर हँसो मत; क्योंकि लक्ष्मी कभी स्थिर नहीं रहती। कुँएँसे जल निकालनेवाले रहटके घटोंको देखो, जो खाली होते जाते हैं, वे भरते जाते हैं तथा जो भरे हैं, वे खाली होते जाते हैं।

❖ अच्छा कार्य करनेवाले कई लोग मिल जायँगे पर बुरा कार्य न करनेवाले कम मिलेंगे। वास्तवमें करने योग्य कामकी अपेक्षा निषिद्ध कामका त्याग करना ज्यादा श्रेष्ठ है।

❖ जैसे सूर्यदेव उदयकाल और अस्तकाल दोनों ही समय रक्तवर्ण रहते हैं, उसी प्रकार मनुष्यको सुख-दुःख और सम्पत्ति-विपत्तिमें एक-सा रहना चाहिये।

✱ दूसरोंके दोष जानते हुए भी उन्हें अन्य व्यक्तियोंके सामने प्रकट नहीं करना चाहिये।

❖ पराये धनका लोभ न करना, मर्यादाको कभी भंग न होने देना, नीचके संगसे दूर रहना, विपत्तिमें धैर्य रखना तथा सम्पत्तिमें विनीत होना—ये सब प्रसन्नताके निश्चित हेतु हैं।

❖ अधिक खर्चीली जीवन-शैली मनुष्योंको रुपयोंका दास बना देती है जिससे कई प्रकारके माप करने पड़ते हैं।

❖ विद्याहीन मनुष्य रूप एवं यौवनसे सम्पन्न तथा उच्चकुलीन होते हुए भी, विद्वानोंकी सभामें शोभा नहीं पा सकता।

❖ धनसे हीन लेकिन ज्ञानवान् मनुष्य कभी गरीब नहीं है, लेकिन वह धनवान् जिसके पास ज्ञान नहीं है, हर तरहसे गरीब है।

❖ यह निश्चित है कि जो हमारे सामने दूसरोंकी निन्दा करता है, वह दूसरोंके सामने हमारी निन्दा करेगा। इसलिये दूसरोंकी निन्दा और गलतियोंको सुननेमें अपना समय नष्ट मत करो।

❖ सम्पत्ति, संतान और विद्या—इनकी प्राप्ति के बाद मनुष्यको सावधान रहना चाहिये; क्योंकि इनकी प्राप्तिसे अहंकार बढ़ जाता है।

❖ अपनी अज्ञानताका अहसास होना ज्ञानकी दिशामें बढ़नेहेतु एक बड़ा कदम है।

❖ उपकारसे बढ़कर कोई धर्म नहीं तथा अपकारसे बढ़कर कोई पाप नहीं।

❖ अभिमान मनुष्यको कभी उठने नहीं देता तथा
स्वाभिमान मनुष्यको कभी गिरने नहीं देता।

❖ अधर्मसे मनुष्य पहले तो एक बार बढ़ता है और अपने छोटे-मोटे शत्रुओंपर धनके बलसे विजय भी प्राप्त कर लेता है, किंतु अन्तमें वह देह, धन, संतान और परिवारसहित समूल नष्ट हो जाता है।

❖ मोक्षप्राप्तिमें वर्ण, आश्रम एवं जातिकी प्रधानता बिलकुल नहीं है अपितु सद्गुण, सदाचार, ईश्वर-भक्ति एवं ज्ञान ही प्रधान हैं।

❖ संतानको सम्पत्तिके साथ संस्कार भी दीजिये; क्योंकि सुसंस्कारित संतान ही सम्पत्तिका सदुपयोग कर सकती है।

❖ जीवनमें आनेवाले दुःखको समस्या मत समझो बल्कि इसे जीवनकी तपस्या समझकर स्वीकार करो।

साधनोपयोगी पत्र

(१)

दुःखोंसे छूटनेके उपाय

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला था। आपने पत्रमें अपनी आर्थिक, शारीरिक और मानसिक स्थितिके बारेमें लिखा, सो सब पढ़ा। आर्थिक स्थिति अच्छी न रहनेके कारण चित्तमें अशान्ति होना स्वाभाविक है। आजकलकी दुनियामें अर्थके बिना कोई काम नहीं सधता, बात-बातमें अर्थकी जरूरत होती है। ऐसी हालतमें अर्थका अभाव क्लेशदायक होगा ही। परन्तु प्रारब्धके विधानके सामने हम क्या कर सकते हैं ?

यथासाध्य उपाय करना चाहिये, सो आप कर ही रहे हैं। उद्योग करनेपर फल नहीं होता, तब सिवा सन्तोषके सुखका और कोई साधन नहीं है। ऋणकी बात भी जरूर बहुत संकट देनेवाली है। इसको उतारनेके लिये यथासाध्य आप उद्योग करते ही हैं। ऋण होनेपर अनाप-शनाप खर्च करना या धन होनेपर भी न देनेका भाव नहीं होना चाहिये। और साधारण खर्चके बाद यदि कुछ बचे तो उसे ऋण-दाताओंको देना चाहिये, परन्तु एक बात स्मरण रखनी चाहिये। यदि साधन करनेपर भगवत्कृपासे भगवत्प्राप्ति हो गयी तो इसी ऋणसे नहीं—समस्त ऋणोंसे जीवको मुक्ति मिल जाती है। अतएव यह कभी नहीं विचारना चाहिये कि पूरा ऋण उतर जानेपर और स्त्री-पुत्रोंके भरण-पोषणके लिये कुछ संग्रह हो जानेपर या अच्छी कमायी होने लगनेपर ही भजन किया जायगा। प्रथम तो यह निश्चय नहीं कि तीनों बातें पूरी होंगी ही। दूसरे यह भी पता नहीं कि यदि ये पूरी हो भी गयीं तो फिर उस समय भजन करनेका मन रहेगा या नहीं। यह याद रखना चाहिये कि एक-एक अभावकी पूर्ति पचासों नये-नये अभावोंको उत्पन्न करनेवाली होती है। मन रहा भी और शरीर पहले छूट गया तो अपनेको क्या लाभ हुआ ? अतएव भजन तो हर हालतमें करना ही चाहिये, साथ ही ऋण चुकाने तथा आजीविकाका साधन संग्रह करनेके लिये चेष्टा भी करते रहना चाहिये। भजनके साथ-साथ ऋण चुक गया तब तो दोनों काम हो गये, नहीं तो भजन हुआ। भजनके प्रतापसे इसी जन्ममें भगवत्प्राप्ति

हो गयी, तब तो सारा बखेड़ा ही तै हो गया; ऐसा न हुआ तब भी जितना भजन हुआ, उतना तो हमारे कल्याणका मार्ग प्रशस्त हुआ ही। जितना रास्ता कटा, उतना ही अच्छा। एक बात और ध्यानमें रखिये।

जिन लोगोंके पास काफी धन है, ऋणकी तो कोई बात ही नहीं, भोगके लिये प्रचुर सामग्री मौजूद है, उनके चित्तमें भी शान्ति धनके होने-न-होनेसे सम्बन्ध नहीं रखती। शान्तिका सम्बन्ध चित्तकी वृत्तियोंसे है। जिसके मनमें कामना, आसक्ति, ममता और अहंकार है, वह चाहे जितना धनी क्यों न हो, कभी शान्ति नहीं पा सकता। वह सदा जला ही करता है। इसके विपरीत जो बिलकुल निर्धन है, परन्तु भगवान्में विश्वासी है, भगवान्का भजन करता है और भगवान्के प्रत्येक विधानमें मंगलमय भगवान्का हाथ देखकर अपना मंगल देखता है, वह महान्-से-महान् दुःखकी हालतमें भी शान्त और सुखी रहता है। बलि राजाका राज्य हरण कर लेनेपर भगवान्से प्रह्लादने कहा था— 'भगवन्! आपने बड़ी दया की।' अतएव आपको विचार करके आर्थिक स्थितिके कारण चित्तमें दुःख नहीं करना चाहिये, भगवान्का विधान मानकर सन्तुष्ट रहना चाहिये। और जहाँतक हो सके, उपार्जनकी शुद्ध चेष्टा करते हुए कम खर्चमें काम चलाना चाहिये। सब दुःखोंके नाशके लिये एकमात्र उपाय बतलाता हूँ। मनमें यह निश्चय करके कि 'हे भगवन्! मैं एकमात्र आपके ही शरण हूँ। आप ही मुझे दुःखोंसे बचायेंगे यह मुझको निश्चय है।' चलते-फिरते, उठते-बैठते मन-ही-मन सदा 'हरिः शरणम्' मन्त्रका जप करते रहिये। यदि विश्वास और श्रद्धापूर्वक इसका जप किया जाय तो सारे संकट टल सकते हैं। इसके सिवा भागवतके आठवें स्कन्धके तीसरे अध्यायका रोज सबेरे आर्तभावसे पाठ कीजिये। इससे भी बहुत लाभ हो सकता है।

भगवान्की सुन्दर तसवीर सामने रखकर उनके एक-एक अंगके ध्यानका अभ्यास कीजिये तथा श्वासके साथ भगवान्के नामका जप करनेकी आदत डालिये। श्वासके आने-जानेमें जो शब्द होता है, उसपर लक्ष्य कीजिये।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७३, शक १९३८-३९, सन् २०१७, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-वसन्त-ऋतु, चैत्र कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ७।४४ बजेतक	सोम	उ० फाल्गुनी सायं ५।४६ बजेतक	१३ मार्च	वसन्तोत्सव (होली)।
द्वितीया " ८।३५ बजेतक	मंगल	हस्त रात्रिमें ७।९ बजेतक	१४ "	मीन-संक्रान्ति रात्रिमें ७।४५ बजे, खरमासारम्भ, वसन्तऋतु प्रारम्भ।
तृतीया " ९।५१ बजेतक	बुध	चित्रा " ८।५८ बजेतक	१५ "	भद्रा दिनमें ९।१२ बजेसे रात्रिमें ९।५१ बजेतक, तुलाराशि दिनमें ८।३ बजेसे।
चतुर्थी " ११।३२ बजेतक	गुरु	स्वाती " ११।१० बजेतक	१६ "	संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ९।२८ बजे।
पंचमी " १।३१ बजेतक	शुक्र	विशाखा " १।३८ बजेतक	१७ "	वृश्चिकराशि रात्रिमें ७।१ बजेसे।
षष्ठी " ३।३८ बजेतक	शनि	अनुराधा " ४।१६ बजेतक	१८ "	भद्रा रात्रिमें ३।३८ बजेसे, मूल रात्रिमें ४।१६ बजेसे।
सप्तमी रात्रिशेष ५।४२ बजेतक	रवि	ज्येष्ठा अहोरात्र	१९ "	भद्रा दिनमें ४।४० बजेतक, भानुसप्तमी।
अष्टमी अहोरात्र	सोम	ज्येष्ठा प्रातः ६।५० बजेतक	२० "	धनुराशि प्रातः ६।५० बजेसे, सायन मेषराशिका सूर्य सायं ६।१६ बजेसे।
अष्टमी प्रातः ७।३२ बजेतक	मंगल	मूल दिनमें ९।१२ बजेतक	२१ "	शुक्रास्त पश्चिममें रात्रिमें १०।२३ बजे, मूल दिनमें ९।१२ बजेतक।
नवमी दिनमें ९।६ बजेतक	बुध	पू० षा० " ११।१७ बजेतक	२२ "	भद्रा रात्रिमें ९।३९ बजेसे, मकरराशि सायं ५।४१ बजेसे, शक-संवत् १९३९ प्रारम्भ।
दशमी " १०।१० बजेतक	गुरु	उ० षा० " १२।५३ बजेतक	२३ "	भद्रा दिनमें १०।१० बजेतक।
एकादशी " १०।४७ बजेतक	शुक्र	श्रवण " २।१ बजेतक	२४ "	कुम्भराशि रात्रिमें २।२१ बजेसे, पापमोचनी एकादशीव्रत (सबका), पञ्चकारम्भ रात्रिमें २।२१ बजे।
द्वादशी " १०।५३ बजेतक	शनि	धनिष्ठा " २।४१ बजेतक	२५ "	शनिप्रदोषव्रत, शुक्रोदय पूर्वमें दिनमें २।२ बजे।
त्रयोदशी " १०।२८ बजेतक	रवि	शतभिषा " २।५० बजेतक	२६ "	भद्रा दिनमें १०।२८ बजेसे रात्रिमें १०।१ बजेतक।
चतुर्दशी " ९।३३ बजेतक	सोम	पू० भा " २।३१ बजेतक	२७ "	मीनराशि दिनमें ८।३५ बजेसे, श्राद्धकी अमावस्या।
अमावस्या " ८।१३ बजेतक	मंगल	उ० भा० " १।४७ बजेतक	२८ "	भौमवती अमावस्या, मूल दिनमें १।४७ बजेसे।

सं० २०७४, शक १९३९, सन् २०१७, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, चैत्र शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा प्रातः ६।३२ बजेतक	बुध	रेवती दिनमें १२।४४ बजेतक	२९ मार्च	मेषराशि दिनमें १२।४४ बजेसे, पंचक समाप्त दिनमें १२।४४ बजे, वासन्तिक नवरात्रारम्भ, 'साधारण' संवत्सर।
तृतीया रात्रिमें २।२१ बजेतक	गुरु	अश्विनी " ११।२४ बजेतक	३० "	मत्स्यावतार, गणगौर, मूल दिनमें ११।२४ बजेतक।
चतुर्थी " १२।० बजेतक	शुक्र	भरणी " ९।५४ बजेतक	३१ "	भद्रा दिनमें १।११ बजेसे रात्रिमें १२।० बजेतक, वृषराशि दिनमें ३।२९ बजेसे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, रेवतीका सूर्य दिनमें २।२९ बजे।
पंचमी " ९।३६ बजेतक	शनि	कृत्तिका " ८।१५ बजेतक	१ अप्रैल	× × × ×
षष्ठी " ७।११ बजेतक	रवि	रोहिणी प्रातः ६।३३ बजेतक	२ "	मिथुनराशि सायं ५।४५ बजेसे।
सप्तमी सायं ४।५२ बजेतक	सोम	आर्द्रा रात्रिमें ३।२७ बजेतक	३ "	भद्रा सायं ४।५२ बजेसे रात्रिमें ३।४८ बजेतक।
अष्टमी दिनमें २।४४ बजेतक	मंगल	पुनर्वसु " २।११ बजेतक	४ "	कर्कराशि रात्रिमें ८।३० बजेसे, श्रीदुर्गाष्टमीव्रत।
नवमी " १२।५१ बजेतक	बुध	पुष्य " १।१३ बजेतक	५ "	श्रीरामनवमीव्रत, मूल रात्रिमें १।१३ बजेसे।
दशमी " ११।१८ बजेतक	गुरु	आश्लेषा " १२।३५ बजेतक	६ "	भद्रा रात्रिमें १०।४४ बजेसे, सिंहराशि दिनमें ११।१८ बजेसे।
एकादशी " १०।९ बजेतक	शुक्र	मघा " १२।२१ बजेतक	७ "	भद्रा दिनमें १०।९ बजेतक, कामदा एकादशीव्रत (सबका), मूल रात्रिमें १२।२१ बजेतक।
द्वादशी " ९।२३ बजेतक	शनि	पू० फा० " १२।३६ बजेतक	८ "	शनि प्रदोषव्रत, वामनद्वादशी।
त्रयोदशी " ९।८ बजेतक	रवि	उ० फा० " १।२० बजेतक	९ "	कन्याराशि प्रातः ६।४६ बजे, श्रीमहावीर-जयन्ती।
चतुर्दशी " ९।२५ बजेतक	सोम	हस्त " २।३६ बजेतक	१० "	भद्रा दिनमें ९।२५ बजेसे रात्रिमें ९।५० बजेतक, व्रत-पूर्णिमा।
पूर्णिमा " १०।१५ बजेतक	मंगल	चित्रा रात्रिशेष ४।२० बजेतक	११ "	तुलाराशि दिनमें १०।४० बजेसे, पूर्णिमा, श्रीहनुमत्-जयन्ती।

पढ़ो, समझो और करो

(१)

आँखों देखा चमत्कार

मैं स्वयं एलोपैथीका प्रशिक्षित रजिस्टर्ड चिकित्सक हूँ। पिछले बीस वर्षोंसे कुष्ठकी बहुऔषधि उपचार-प्रणाली एवं कई जिलोंकी कुष्ठनियन्त्रण इकाईका प्रभारी रहा हूँ।

आधुनिक वैज्ञानिक तथ्योंके अनुसार कुष्ठ एक जीवाणु-जन्य रोग है। यह माइको बैक्टीरियम लेप्री नामक जीवाणुसे होता है। यह रोग शरीरपर देहके रंगसे फीके दागसे प्रारम्भ होकर तन्त्रिकाओंको नुकसान पहुँचाने, हाथ-पैरोंकी अंगुलियोंके संवेदनशील हो जाने, लगातार चोट लगने, जल जाने, कट जानेसे हाथ-पैरोंमें आयी स्थायी विकृतियों, नाकके बैठ जाने, आँखोंकी भौहोंके उड़ जाने आदिके कारण बेहद कुरूप-रूपमें प्रकट होता है। शरीरपर धब्बोंकी संख्या और रोगग्रस्त तन्त्रिकाओंकी संख्याके आधारपर ही इसका वर्गीकरण किया जाता है एवं उपचार, डोज तथा अवधि तय की जाती है। उपचार बेहद प्रभावशाली, शत-प्रतिशत सफल, सहज, सरल, निःशुल्क उपलब्ध है—यह है इस रोगका वैज्ञानिक चिकित्सकीय पक्ष। यह संक्रामक भी नहीं है और संसर्गसे नहीं होता।

इसका दूसरा पक्ष है—पापकी, पूर्वजन्मोंसे जुड़े अपराधोंकी धार्मिक अवधारणा। उसीके कारण भ्रम, भय, अन्धविश्वास, आत्मग्लानि, सामाजिक बहिष्कार, घृणा, उपेक्षा, सम्बन्ध-विच्छेद, आत्मघात सब जुड़ा है। इसके विरुद्ध अनेक प्रामाणिक प्रतिष्ठित समाजसेवी संस्थानोंके सहयोगसे मैंने स्वयं देशके सुदूर आदिवासी घूमन्तू क्षेत्रोंमें भय-भ्रम-निवारण शिविर—त्रिसंवाद (पीड़ित-सेवाप्रदाता-समाज) आयोजित किये हैं।

पर जो कुछ मैंने स्वयं अपनी आँखोंसे देखा है, उसे कैसे नकार दूँ! उन दिनों (सन् १९७१—७४ ई०) में वृन्दावनभूषण परमरसिक विरक्तश्री श्रीपादजीमहाराज,

ब्रज अकादमीके अधिष्ठाताकी तरह राजस्थानसरकारद्वारा वृन्दावनमें दिये अशोकमहलमें विराजते थे। दरिद्र गृहस्थसे लेकर राज्यपाल और राष्ट्रपतितक महाराजजीके सम्पर्कमें रहते थे और उनके कृपापात्र थे। जरूरतमन्द साधकों, जिज्ञासुओंके लिये तो महाराजजी अघोषित भगवान् ही थे। उन अपार करुणावान् सिद्ध पुरुषकी सेवा और सन्निधिमें मुझे कई अघटन घटनाएँ घटित होते देखनेका सौभाग्य मिला, उनमेंसे एक घटना इस प्रकार है—

एक बार दक्षिणके एक संन्यासी अकादमी पधारे, उनके कृपालु गुरुने उन्हें अनन्तशयनम् स्वामी नाम दिया था। दैववशात् उन्हें कुष्ठ हुआ था, हाथोंकी दसों अंगुलियाँ गल गयी थीं, चेहरा भी विकृत हो गया था। श्रीमहाराजने मुझे दिखाकर उपचारका आदेश दिया। बहुऔषधि प्रणालीका उपचार सहज उपलब्ध था, पर स्थायी विकृतियोंका तो कोई उपचार न था—सिवा महँगी और समय-साध्य कई बारमें की जानेवाली प्लास्टिक सर्जरीके, जिसके लिये वे स्वयं भी सहमत न थे, पर आत्मग्लानि एवं सामाजिक प्रताड़नासे अत्यन्त दुखी होकर केवल आत्मघातकी बात ही सोचते थे।

और बस, तभी श्रीमहाराजजीका आदेश हुआ, जिसपर नये लोग, विज्ञान कभी विश्वास ही नहीं करेगा। महाराजजीने वाराणसीके अपने एक भक्तके नाम पत्र लिखकर एक सेवकके साथ अनन्तशयनम् स्वामीको वाराणसी भेज दिया। उन्हें छः माहतक वाराणसीमें रहकर प्रतिदिन तीन बार ब्रह्मवारि जाह्नवीमें स्नान, विश्वनाथदर्शन और २१-२१-२१ बेलपत्र खानेका आदेश दिया। साथ ही अन्य कोई औषधि न लेनेका निषेधात्मक आदेश भी दिया।

मैं शपथपूर्वक इस बातका साक्षी हूँ कि छः माह बाद वृन्दावन लौटे अनन्तशयनम् स्वामी सर्वांगसुन्दर थे और उनपर कुष्ठकी विकृतियोंका कोई निशानतक शेष न था, मैं स्वयं विश्वास नहीं कर सकता था। मेरा प्रशिक्षण

और शिक्षण सब नकारता था, पर आँखोंमें अंगुली डालनेवाला यह तथ्य मेरे ज्ञानसे परे था! प्रत्यक्षको क्या प्रमाण! स्वयं स्वामी अनन्तशयनम् मेरे साथ श्रीमहाराजके आदेशसे लीला-पुरुषोत्तम, सर्वसमर्थ, नटनागर श्रीराधावल्लभजीकी आरतीमें मुझसे सटे खड़े थे। जय जाह्नवी, जय विश्वनाथ!—नारायण तिवारी वाशिष्ठ

(२)

लेन-देन

यह घटना लगभग चालीस वर्ष पूर्व मोतिहारी, पूर्वी चम्पारण (बिहार)-की है।

एक गरीब मास्टर थे। बहुत तंगीमें उनका जीवन बीत रहा था। स्कूलकी थोड़ी-सी तनख्वाह। चार बच्चोंके साथ उनका गुजर-बसर बहुत मुश्किलसे हो पा रहा था।

एक दिन उनका बड़ा बेटा बीमार हो गया। मास्टर साहब उसे अस्पताल ले गये, दवा दिलवायी। स्थिति ठीक हुई तो उसे घर ले आये। घर आते ही उसने कहा—बाबूजी! मेरे बाकीके रुपये भी वापस कर दो न! पिताने पूछा—कैसे रुपये? लड़का—मेरे वही १५० रुपये, जो बाकी हैं, दे दो न? अब मैं जाऊँगा।

पिता—पैसे-रुपये कहाँ हैं मेरे पास ?

लड़का—‘ये घड़ी है न आपके पास। इसे ही बेंचकर मेरे पैसे दे दो? अब कबतक इन्तजार करता रहूँ? अपना बकाया लेकर मैं जाऊँगा न।’

बात पिताकी कुछ समझमें नहीं आयी। उन्हें लगा, बीमारीसे बच्चा दुर्बल हो गया है और ऐसे ही अनर्गल कुछ भी बडबडा रहा है।

कुछ ही दिनों बाद बच्चेकी तबियत पुनः बिगड़ने लगी। उसे वापस अस्पताल लाना पड़ा। डॉक्टरने दवा लिखी। दवा खरीदनेके लिये इस बार मास्टर साहबके पास बिलकुल पैसे नहीं थे। मजबूरन उन्हें अपनी घड़ी बेचनी पड़ी। दवा १५० रुपयेकी आयी।

जब वे दवा लेकर बच्चेके पास गये, तब लडकेने

हाथ बढ़ाकर दवा ले ली। उसके चेहरेपर सन्तोष छलक आया। उसने कहा—‘हाँ, ठीक है। अब मैं जाता हूँ।’ हाथमें दवा थामे लड़केने सदाके लिये आँखें बन्द कर लीं। अवाक् खड़ा पिता पहले कहे हुए उसके शब्दोंका सामंजस्य बिठाता रहा, उसे समझनेका प्रयत्न करता रहा।

क्या जीवनके सब रिश्ते लेन-देनका हिसाबमात्र ही नहीं हैं?—डॉ० अरुणा 'अनू'

(३)

गिरावटके समयमें भी ईमानदारी

वैसे तो जीवनमें ढेर सारे बुरे अनुभवोंके साथ अच्छे अनुभव भी होते रहते हैं, लेकिन कुछ अनुभव ऐसे होते हैं, जो भूले नहीं जा सकते और उन्हें भूला जाना भी नहीं चाहिये। ऐसा ही एक अनुभव प्रस्तुत है—

मैं आयुध निर्माणी अम्बरनाथ, महाराष्ट्रमें कार्यरत हूँ। एक दिन (मई २०१६ का दूसरा सप्ताह था) गेटसे अन्दर अपने कार्यालय जाते समय रास्तेमें एक समवयस्क स्त्री कर्मचारीने मुझे रोककर ललितासिंह नामक स्त्रीके बारेमें पूछा। मैंने उसे बताया कि मेरे सिवा सिंह सरनेमकी कोई स्त्री निर्माणीमें नहीं है। मैंने पूछताछका कारण जानना चाहा तो पता चला साथमें खड़े लड़केको केनरा बैंक, ईस्टेट शाखाके सामने एक ए० टी० एम० कार्ड मिला है, जिसके साथ पर्चीमें पिननम्बर भी है। मैंने कहा कि रक्षा-मन्त्रालयकी दूसरी निर्माणी एम०टी०पी०एफ० जो कि बगलमें है; में यह महिला हो सकती है। मैं पूछताछ करूँगी, किंतु तुम भी थोड़ा ध्यान रखना। वह लड़का लैब अनुभागमें परीक्षक पदपर था। डेढ़-दो वर्ष पूर्व कई लड़के विभिन्न पदोंपर नियुक्त हुए थे, जिन्हें हम लोग अभीतक ठीकसे पहचान भी नहीं पाये हैं।

मैंने कार्यालय पहुँचकर एम०टी०पी०एफ० के एक्सचेंज और कर्मचारी स्टॉफसे सम्बन्धित अनुभागोंमें पछताछ किया तो ललितासिंहका पता चल गया। उस

कार्यालयके जो सज्जन मुझे फोनपर मिले, उन्हें उस लड़केसे पहले ही सूचना मिल चुकी थी। बादमें मैं यह घटना भूल गयी। शायद तीसरे दिन वह लड़का दिखा तो मुझे फिर यह घटना याद आ गयी। पूछनेपर पता चला कि ललितासिंहने उसी दिन आकर ए० टी० एम० कार्ड ले लिया था। उनके खातेमें ७० हजारसे ऊपर रुपये जमा थे। वे खुशीसे रो पड़ी थीं।

मुझे आज भी यह सोचकर आश्चर्य होता है कि इस गिरावटके समयमें जबकि लोग दूसरेका पैसा-सम्पत्ति हड़पनेको तैयार बैठे हैं; उस लड़केने निर्लिप्तभावसे ए० टी० एम० कार्ड वापस कर दिया ।—सूश्री उर्मिलासिंह

$$(\gamma)$$

अनूठी ईमानदारी

इस घोर कलिकालमें आज जहाँ मानव बेईमानी एवं पराये धनको चोरी एवं अन्यायपूर्वक हड़पनेमें लगा हुआ है, वहीं यह घटना मानव-समाजके समक्ष ईमानदारीका अब्धुत उदाहरण है। यह घटना ७ जून, २०१५ ई० की है। मेरा पुत्र जूनकी छुट्टीमें अपने परिवारके साथ देहरादूनसे जनता एक्सप्रेससे लौट रहा था। उसको बरेली जंक्शनपर उतरना था। सारा सामान उतारकर सब लोग स्टेशनपर उतर गये, जल्दीबाजीमें मेरे पुत्रकी सोनेकी अँगूठी अंगुलीसे निकलकर ए०सी० कोचमें कहीं गिर गयी, परंतु उसे इसका पता नहीं चला। वह स्टेशनपर Waiting room (वेटिंग रूम)–में ठहरने चला गया, तब बादमें पता चला कि अँगूठी गिर गयी है। मेरे पुत्रने अनुमान लगाया कि अँगूठी ट्रेनके कोचमें ही गिर गयी है, तबतक ट्रेन जा चुकी थी। मेरे बेटेने इस सम्बन्धमें स्टेशनमास्टरसे बात की, जो कि एक सज्जन व्यक्ति थे, उन्होंने बताया कि अँगूठी मिलना मुश्किल है, फिर भी टी०टी०ई० से बात करके देखते हैं। स्टेशनमास्टरने ट्रेनके ड्राइवरसे बात की तथा ड्राइवरने कोचके टी०टी०ई० महोदयसे बात की तो उन्होंने बताया कि अँगूठी उनके पास है तथा अगले दिन जब वह ट्रेन लेकर बरेली पहुँचेंगे

तब अँगूठी मिल जायगी। मेरा बेटा जब अगले दिन बरेली गया, तब वे टी०टी०ई० महोदय अँगूठी लेकर ट्रेनके कोचमें दरवाजेपर खड़े थे तथा उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक वह अँगूठी मेरे बेटेको दे दी। उन महोदयकी कर्तव्यनिष्ठा और ईमानदारी स्तुत्य है। मेरा पूरा परिवार उनकी मंगलकामना करता हुआ भगवान्से उनके स्वस्थ एवं समृद्ध जीवनके लिये प्रार्थना करता है। कलियुगमें ऐसे महापुरुष धन्य एवं विरले हैं।—प्रेमशंकर मिश्रा

(4)

कर्जका भय

बात पहलेकी है। एक बार हीरालाल नामक एक किसान आया और मुझेसे पूछने लगा—‘तुम सागरमलजीके लड़के हो क्या?’ मेरे ‘हाँ’ कहनेपर वह सौ रुपये निकालकर देने लगा और बोला—‘बहुत दिन हुए मैं तुम्हारे पिताजीसे एक सौ रुपये उधार ले गया था। उस समय तुम बहुत छोटे थे। अबतक मैं वे रुपये नहीं लौटा सका। अब मेरे पास रुपये जुटे हैं, तब लेकर आया हूँ।’ मैं उसकी ओर देखता रह गया। तब उसने फिर कहा—‘मैं तुम्हारे पैर पकड़ता हूँ। मुझे कर्जसे मुक्त कर दो। मैं ब्याज नहीं दे सकूँगा। किसी तरह बड़ी कठिनाईसे रुपये इकट्ठे कर पाया हूँ। मुझे कर्जका बड़ा भय है, बाबू!’ यों कहकर वह बार-बार हाथ-पैर जोड़ने लगा।

मैंने सोचा कितना ईमानदार और कर्जसे डरनेवाला है यह बूढ़ा किसान। बड़े-बड़े लोग भी आज कानूनसे बचकर रुपये हजम कर जाते हैं। मैंने चाचाजीसे बिना पूछे ही रुपये ले लिये तथा उससे कह दिया—‘तुम कर्जसे मुक्त हो गये।’ वह प्रसन्न होकर चला गया।

ये रुपये लगभग पच्चीस वर्ष पहलेके थे। हमारे पास कोई भी हिसाब नहीं था। यहाँतक कि चाचाजीको भी याद नहीं था।

किसानकी इस ईमानदारीको देखकर भगवान्से यही प्रार्थना की जाती है कि हम सबको भगवान् ऐसी ही सदबुद्धि दें।—हरीराम केडिया

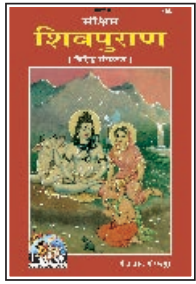
‘कल्याण’ के पाठकोंसे नम्र निवेदन

फरवरी माह सन् २०१७ ई० का अङ्क आपके समक्ष है। यह अङ्क उन सभी ग्राहकोंको भी भेजा गया है, जिनको सन् २०१७ ई० का विशेषाङ्क ‘श्रीशिवमहापुराणाङ्क’ वी०पी०पी० द्वारा भेजा गया है, लेकिन उसका भुगतान हमें प्राप्त नहीं हो पाया है। जिन ग्राहकोंकी वी०पी०पी० किसी कारणसे वापस हो गयी है, उनसे अनुरोध है कि सदस्यता-शुल्क मनीआर्डर/ड्राफ्टसे भेजकर रजिस्ट्रीसे पुनः मँगवानेकी कृपा करेंगे। वी०पी०पी०से पुनः मँगवाने-हेतु अनुरोध-पत्र भेजना चाहिये।

जिन ग्राहकोंको सदस्यता-शुल्क भेजनेके उपरान्त भी उनके रुपये यहाँ न पहुँचने अथवा उनके रुपयोंका यहाँ समायोजन आदि न हो सकनेके कारण वी०पी०पी०से अङ्क प्राप्त हो गया है, उनसे अनुरोध है कि वे किसी अन्य व्यक्तिको वह अङ्क देकर ग्राहक बना दें और उनका नाम, पूरा पता तथा अपनी ग्राहक-संख्या आदिके विवरणसहित हमें भेज दें, जिससे उन्हें नियमित ग्राहक बनाकर भविष्यमें ‘कल्याण’ सीधे उनके पतेपर भेजा जा सके। यदि नया ग्राहक बनाना सम्भव न हो तो पूर्व जमा रकमकी वापसी या समायोजनहेतु पत्र भेजना चाहिये।

व्यवस्थापक—‘कल्याण-कार्यालय’, पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ०प्र०)

श्रीमहाशिवरात्रिपर्वपर पाठ-पारायण एवं स्वाध्याय-हेतु प्रमुख प्रकाशन



संक्षिप्त शिवपुराण, सचित्र (मोटा टाइप) कोड 1468, विशिष्ट संस्करण, सजिल्द—इस पुराणमें परात्पर ब्रह्म श्रीशिवके कल्याणकारी स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, रहस्य, महिमा और उपासनाका विस्तृत वर्णन है। इसमें भगवान् शिवके उपासकोंके लिये यह पुराण संग्रह एवं स्वाध्यायका विषय है। मूल्य ₹२५०, सामान्य संस्करण (कोड 789) मूल्य ₹२००, (कोड 1286) मूल्य ₹२०० गुजराती, (कोड 975) मूल्य ₹२०० तेलुगु, (कोड 1937) बँगला मूल्य ₹१६०, (कोड 1926) मूल्य ₹१७५ कन्नड़, (कोड 2043) मूल्य ₹२०० तमिल भी उपलब्ध।

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
2020	शिवमहापुराण-मूलमात्रम्	२५०	1156	एकादशरुद्र (शिव)-चित्रकथा	५०	228	शिवचालीसा-पॉकेट साइज	३
1985	लिङ्गमहापुराण-सटीक	२००	204	ॐ नमः शिवाय ”	२५	1185	शिवचालीसा-लघु	२
1417	शिवस्तोत्ररत्नाकर-सानुवाद	३०	1343	हर हर महादेव ”	२५	1599	श्रीशिवसहस्र...नामावलि...	८
1899	श्रावणमास-माहात्म्य ”	३२	1367	श्रीसत्यनारायणव्रतकथा	१२	230	अमोघ शिवकवच	३
1954	शिव-स्मरण	१०	563	शिवमहिम्नःस्तोत्र	५	1627	रुद्राष्टाध्यायी-सानुवाद	३०

बहुत दिनोंसे अनुपलब्ध पुस्तकें—अब उपलब्ध

संत-अङ्क (कोड 627)—इसमें उच्चकोटिके अनेक संतों—प्राचीन, अर्वाचीन, मध्ययुगीन एवं कुछ विदेशी भगद्विश्वासी महापुरुषों तथा त्यागी-वैरागी महात्माओंके ऐसे आदर्श जीवन-चरित्र हैं। मूल्य ₹१८०

अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश (कोड 1593) ग्रन्थाकार—इस ग्रन्थमें मूल ग्रन्थों तथा निबन्ध-ग्रन्थोंको आधार बनाकर श्राद्ध-सम्बन्धी सभी कृत्योंका साङ्गोपाङ्ग निरूपण किया गया है। ग्रन्थके प्रारम्भमें आये हुए शताधिक प्रमाणोंको हिन्दी-अनुवादके साथ दिया गया है। ग्रन्थमें मूल प्रयोग-भाग संस्कृतमें तथा प्रक्रिया-सम्बन्धी सभी निर्देश हिन्दीमें दिये गये हैं। मूल्य ₹१३०

श्रीरामचरितमानस-ग्रन्थाकार (कोड 1318) मूल-रोमन-वर्णान्तर, अंग्रेजी अनुवाद। मूल्य ₹३००

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

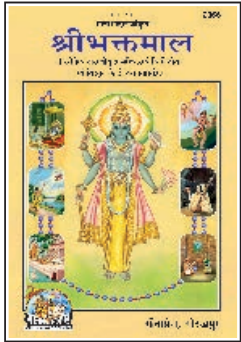
FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with

By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!

नवीन प्रकाशन—अब उपलब्ध

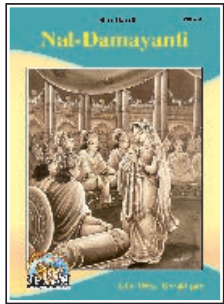


श्रीभक्तमाल (कोड 2066)—भक्तमाल परमभागवत श्रीनाभादासजी महाराजकी काव्यमयी रचना है। इसमें चारों युगों, विशेषकर कलियुगके भक्तोंका बड़े ही रोचक ढंगसे वर्णन हुआ है। सन् २०१३ ई० में कल्याणके विशेषांकके रूपमें भक्तमाल-अंकका प्रकाशन हुआ। विशेषांककी पृष्ठ-संख्या सीमित होनेके कारण उसमें भक्तोंकी कथाको अत्यन्त संक्षेपमें ही देना पड़ा। अब विस्तृत व्याख्याके साथ भक्तमालको ग्रन्थरूपमें प्रस्तुत किया जा रहा है। आशा है पाठक-पाठिकागण इस भक्तमालको पढ़कर लाभान्वित होंगे। मूल्य ₹२३०

कल्याण विशेषांकके रूपमें प्रकाशित भक्तमाल-अंक भी उपलब्ध (कोड 1947)। मूल्य ₹१३०

आदर्श बाल-कहानियाँ (कोड 2067)—चार रंगों एवं आर्ट पेपरपर छपी प्रस्तुत पुस्तकमें भगवान् परशुराम, सत्यकाम जाबाल, नचिकेता, भक्त हनुमान्, भीष्मपितामह, कबीर, नानकदेव आदिके विषयमें सरल भाषामें जानकारी दी गयी है। मूल्य ₹ २५

आदर्श बाल-कथाएँ (कोड 2068)—चार रंगों एवं आर्ट पेपरपर छपी प्रस्तुत पुस्तकमें रामायण एवं महाभारतको कथाके रूपमें एवं श्रीकृष्ण, श्रवण कुमार, प्रह्लाद, ध्रुव आदिके चरित्रका वर्णन अत्यन्त सरल भाषामें किया गया है। मूल्य ₹ २५



Nal-Damayanti (Code 2064)—[‘नल-दमयन्ती’ का अंग्रेजी अनुवाद] पुस्तकाकार—महाभारतके आधारपर ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाद्वारा लिखा गया नल-दमयन्तीके चरित्रका मनोहर चित्रण। मूल्य ₹5 (कोड 273) हिन्दी, (कोड 645) तमिल, (कोड 916) तेलुगु, (कोड 836) कन्नड़, (कोड 1059) गुजराती, (कोड 1203) ओड़िआ और (कोड 1385) मराठीमें भी उपलब्ध।

Ideal Women (Code 2063)—[‘आदर्श देवियाँ’ का अंग्रेजी अनुवाद]—पुस्तकाकार—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाद्वारा पराम्बा सीता, देवी कुन्ती, द्रौपदी, गान्धारीके जीवन-चरित्रका अनूठा चित्रण, जिसमें उनके पति-प्रेम, पति-सेवा, त्याग, सहिष्णुता, निर्भयता आदि गुणोंके विषयमें ऐसा मनोहर वर्णन किया गया है जिसे पढ़कर आँखोंसे प्रेमाश्रु छलक पड़े। मूल्य ₹8 (कोड 291) हिन्दी, (कोड 1221) ओड़िआ भी।

महाभारत कथा (कोड 2061) मराठी—प्रस्तुत पुस्तकमें भगवान् श्रीकृष्णकी महानताको दर्शाते हुए महाभारतकी कुछ प्रमुख कथाएँ सरल मराठी भाषामें वर्णित हैं। मूल्य ₹३५

शीघ्र प्रकाश्य-नवीन प्रकाशन—श्रीसकळसंतगाथा (कोड 2062) मराठी—प्रस्तुत ग्रन्थमें श्रीज्ञानेश्वर, श्रीनिवृत्तिनाथ, श्रीसोपानदेव, श्रीमुक्ताबाई, श्रीचोखामेळा, श्रीएकनाथ महाराज, श्रीनिळोब महाराज आदि महाराष्ट्रके कुछ संतोंकी वाणियाँ प्रकाशित की गयी हैं। श्रीतुकाराम गाथा एवं नामदेवांची गाथा अलगसे प्रकाशित है।